ईशदूतत्व की धारणा

विभिन्न धर्मों में

विषय-सूची

क्या?		कहाँ?
1. कुछ सोचने की बातें	—मुहम्मद इक़बाल मुल्ला	5
2. ईशदूतत्व की मौलिक धारणा	—डॉ. मुहम्मद अहमद	10
3. हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) अन्तिम ईशदूत क्यों? एक बौद्धिक विश्लेषण	—मुहम्मद ज़ैनुल आबिदीन मंसूरी	35
4. ईशदूत : आवश्यकता व महत्व	—डॉ. सैयद शाहिद अली	46

कुछ सोचने की बातें

❖ मुहम्मद इक़बाल मुल्ला

मानव जाति को एक ऐसे मार्गदर्शन और सिद्धांतों की आवश्यकता है, जिससे कि वह अपने व्यक्तिगत व सामूहिक जीवन का निर्माण कर सके और अपना जीवन सुखमय एवं शान्तिपूर्वक व्यतीत करे और साथ ही साथ उसका इस प्रकार सर्वांगीण विकास हो कि उसके भौतिक एवं आर्थिक जीवन और आध्यात्मिक एवं नैतिक पहलुओं के बीच आपसी टकराव न हो और न ही संतुलन बिगड़े।

विचार करने से पता चलता है कि मानव जीवन से संबंधित मूल प्रश्न ये हो सकते हैं कि उसे पैदा करनेवाला और इस पूरे ब्रह्माण्ड का निर्माता कौन है? मानव और 'उसके' बीच का संबंध किस प्रकार का है? जीवनदाता के निकट मनुष्य के जीवन का उद्देश्य क्या है? संसार के रचयिता एवं निर्माता की इच्छा क्या है? इस जीवन का अंत मृत्यु है, या मृत्यु के बाद भी कोई जीवन है, अगर है तो 'दूसरा' जीवन कैसे सफल हो सकता है?

ये ऐसे प्रश्न हैं, जिनका उत्तर मानव इतिहास के बुद्धिजीवी और शुभचिंतक समय-समय पर देने का प्रयास करते रहे हैं। उन्होंने ख़ुदा और Ultimate Reality (यथार्थ) का भी पता लगाने का प्रयास किया, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। क्योंकि, प्रथमतः उनके ये विचार अपनी-अपनी कल्पनाओं पर आधारित थे, जिससे उनके विचारों में समन्वय नहीं था, दूसरी बात यह कि मानव का ज्ञान एवं विचार संकुचित और सीमित होता है। फिर भी, अगर उनके इन काल्पनिक विचारों से विकास संभव भी हुआ तो, इस विकास का लाभ एक विशेष वर्ग को जाएगा, जिसमें नैतिकता एवं आध्यात्मिकता का सतत अभाव होगा और विकसित वर्गों का वर्चस्व रहेगा। ऐसे समाज में मानव को सुख-चैन कहां से मिल पाएगा?

प्रसिद्ध इतिहासकार टाइन बी. के शब्दों में—

> Most of the world civilizations were destroyed on the rock of material progress. (by Toyn Be)

जब से मानव जाति का इतिहास रहा है इन प्रश्नों का उत्तर समय-समय पर ईश्वर अपने संदेष्टाओं और 'आदेशों' द्वारा देता रहा है। अंततः 'उसने' अपना अंतिम आदेश अपने अंतिम संदेष्टा द्वारा भेजकर इस प्रकार की सभी संभावना को समाप्त कर दिया और वह आदेश 'धर्म' है। जो व्यक्ति ईश्वर के इस निर्दिष्ट धर्म का अनुपालन करेगा, वही दोनों लोकों में सफल होगा।

यह बात समझ में नहीं आती कि अपनी सृष्टियों में से उसने पक्षियों को उड़ना और मछलियों को तैरना सिखाया है, लेकिन इंसान के मार्गदर्शन के लिए कुछ नहीं किया। क्या मानव के साथ खुदा की दुश्मनी है कि उसे मार्गदर्शन की खोज में भटकता छोड़ दे?

ईश्वर मानव को अपनी अनुपम सृष्टि कहता है। वह हमसे अत्यधिक प्रेम करता है। वह इतना महान, सर्वज्ञ और न्यायप्रिय है कि मानव के प्रत्यक्ष और परोक्ष की सारी आवश्यकताओं को जानता है और उसकी पूर्ति भी करता है। उसने हमारे लिए सारी चीज़ों को पैदा किया। उसकी नेमतों में केवल वे ही चीज़ें शामिल नहीं हैं, जो हमें आखों से नज़र आती हैं, बल्कि अनगिनत ऐसी चीज़ें हैं जो दिन-रात हमारी सेवा में लगी रहती हैं, परन्तु वे हमें नज़र नहीं आतीं।

एक इंजीनियर या किसी चीज़ का बनानेवाला अपने उत्पादक का Manual भी पेश करता है। उत्पादन में अगर कोई ख़राबी होगी तो उसे उसी Manual के ज़रीए से पता करके दूर किया जा सकता है। इसी तरह ईश्वर ने अपनी सारी सृष्टि के लिए क़ानून और जीने का तरीक़ा प्रदान किया है।

ईश्वर ने इंसान की सभी आवश्यकताओं को बहुत अच्छे रूप से पूरा किया है। अर्थात उसने इंसानों में से सबसे विशिष्ट व्यक्ति को अपना प्रतिनिधि नियुक्त करके संदेष्टा या संदेशवाहक बनाया। उनपर वह्य के द्वारा अपना संदेश और मार्गदर्शन भेजता रहा है। संदेशवाहक या संदेष्टा (Prophets, Messengers) बहुत ही नेक, सच्चे, निःस्वार्थ और बेहतरीन इंसान होते थे। वे केवल रहनुमाई और मार्गदर्शन पेश करनेवाले नहीं होते थे, बल्कि सबसे पहले उनपर अमल करनेवाले होते थे। ज़मीन पर ख़ुदा का प्रतिनिधित्व करते थे और ईश्वर की इच्छा के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करते थे। वे स्पष्ट रूप से बताते थे कि उनको वह्य (Divine Revealation) के द्वारा यह सब

ज्ञान अल्लाह की ओर से प्राप्त हो रहा है। वे अपनी इच्छा से कुछ नहीं कहते, बल्कि अल्लाह की ओर से कहते थे। उनकी कथनी और करनी में कोई अन्तर नहीं होता था। वह अल्लाह का संदेश, मार्गदर्शन, आदेश और निर्देश किसी वर्ग और जाति के लिए नहीं लाते थे, बल्कि उनके सामने समस्त मानवजाति होती थी। संदेशवाहकों ने कभी मानव को जन्म, भाषा, वंश और प्रांत के आधार पर बांटा नहीं। उनके मार्गदर्शन को स्वीकार करते हुए और उनके बताए गए मार्ग पर चलते हुए जीवन व्यतीत करना, वास्तव में ईश्वर को मानना और उसके आदेश व निर्देश का पालन करना है और संदेशवाहक को नकारना तथा उसके मार्गदर्शन को अस्वीकार करना केवल संदेशवाहक का इंकार नहीं, बल्कि अल्लाह का इंकार है। इतिहास में एक लाख से अधिक संदेशवाहक संसार के अन्य भागों में अलग-अलग समय और काल में आते रहे, केवल कुछ के नाम क़ुरआन और बाइबल में आए हैं। आदम (अलैहि.), नूह (अलैहि.), इबराहीम (अलैहि.), इस्माईल (अलैहि.), इसहाक़ (अलैहि.), याक़ूब (अलैहि.), यूसुफ़ (अलैहि.), मूसा (अलैहि.), ईसा (अलैहि.) और अन्तिम समय में हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) आए।

जीवन के जिन मूल प्रश्नों की चर्चा ऊपर की गई है, उसके उत्तर में संदेशवाहकों ने केवल एक ही बात कही। उनके उत्तरों में कोई विरोधाभास नहीं है। क्योंकि संदेशवाहकों ने कोई बात अपनी तरफ़ से नहीं कही, बल्कि उन्होंने जो बातें कहीं वे ईश्वर की ओर से कहीं। अंत में मुहम्मद (सल्ल.) ने भी बताया कि वे उन प्रश्नों के उत्तर के रूप में जो ज्ञान दे रहे हैं, वह कोई नई बात नहीं है, कोई नया संदेश नहीं है, बल्कि पिछले संदेशवाहकों ने जो कुछ बताया था हम वही बात पेश कर रहे हैं।

1. इस सृष्टि, मानव और ब्रह्माण्ड सबको पैदा करनेवाला ईश्वर है। वही सबका मालिक है। ईश्वर का इंकार नहीं किया जा सकता है।

2. इंसान अनुपम सृष्टि है। उसका जीवन एक परीक्षा है। मानव ईश्वर के आगे उत्तरदायी है। उसके जीवन की सफलता, विकास और मुक्ति के लिए मार्गदर्शन की आवश्यकता है। ईश्वर ने उनका मार्गदर्शन अपने संदेष्टाओं के द्वारा पहले ही दिन से करना प्रारंभ कर दिया है।

3. संदेष्टाओं के संदेश और उनकी शिक्षाओं को मानकर जिन्होंने

पारलौकिक जीवन में पेश आनेवाले कर्म की पूछताछ पर विश्वास करके अपना जीवन व्यतीत किया, वे ही लोग इस लोक और परलोक दोनों में सफल होंगे और स्वर्ग का आनंद भोगेंगे और जिन्होंने ऐसा नहीं किया, वे लोग असफल होकर नरक की यातना भोगेंगे। हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) अन्तिम संदेष्टा हैं और क़ुरआन अन्तिम ईशग्रंथ। यह दोनों अर्थात हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की पवित्र जीवनी, आपकी कही हुई बातें (हदीस) और क़ुरआन सुरक्षित हैं। इसी तरह इस्लाम सुरक्षित और प्रमाणिक धर्म है। यह विशेषता केवल इस्लाम को ही प्राप्त है।

ईश्वर के अन्तिम संदेष्टा हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) और अन्तिम ईशग्रंथ क़ुरआन होने का अर्थ यह है कि हम सारे संदेष्टाओं को (उनका नाम ज्ञात हो या न हो) मानें और उनका आदर करें। सारे ईश्वरीय ग्रंथों को मानें। आइए, अब ईशदूत मुहम्मद (सल्ल॰) के संदेश और उनकी शिक्षाओं पर ग़ौर करें, क्योंकि जिस काल व जिस समय के लिए पिछले संदेष्टाओं और ग्रंथों को भेजा गया था, अब वे परिस्थितियां नहीं रहीं। पिछले संदेष्टाओं का जीवन और उनपर अवतरित ईशग्रंथ सुरक्षित नहीं रहे। वे एक विशेष काल और समुदाय के लिए थे। दूसरी बात यह है कि पिछले संदेष्टाओं और ईशग्रंथों की शिक्षाओं को क़ुरआन ने अपने अन्दर समाहित कर लिया है। हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) को अन्तिम संदेष्टा और क़ुरआन को अन्तिम ईशग्रंथ मानने का अर्थ यह है कि हम सारे संदेष्टाओं को मानते हैं। अगर अस्वीकार करते हैं, तो इसका अर्थ यह होगा कि हम किसी भी ईशग्रंथ और संदेष्टा को नहीं मानते, यहां तक कि हम ईश्वर को भी नहीं मानते।

प्रश्न यह उठता है कि संदेष्टाओं और अन्तिम संदेष्टा हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) को अल्लाह की ओर से संदेश और शिक्षाओं के पहुंचने का माध्यम क्या था? यह माध्यम वह्य (Divine Revealation) कहलाती है।

वह्य क्या है?

कहा जा सकता है कि वह्य God's own way of communication है। अर्थात् ईश्वर अपने बन्दे को संदेश भेजता है, संदेश लाने वाले फ़रिश्ते जिबरील (अलैहि॰) थे। उपर्युक्त सच्चाइयों के बारे में हमें जानकारी ईश्वर से ही मिल सकती है। क्योंकि ईश्वर ने मानव और उसके मस्तिष्क को बनाया

है और वह उसकी नफ़सीयात (Psychology) को अच्छी तरह जानता है। मानव जीवन के लिए सही या ग़लत, वैध या अवैध और लाभदायक और हानिकारक क्या है? इस प्रकार की सभी सच्चाइयों को ईश्वर ही बता सकता है।

हमारे पास बुद्धि है, परन्तु उसकी कुछ सीमाएं हैं, इससे ज़्यादा वह बढ़ नहीं सकती। उदाहरण के रूप में देखें, ब्याज, जुआ और लॉटरी। बुद्धि तो कहती है कि इसमें कोई ख़राबी नहीं है, इससे लाभ उठाना चाहिए। परन्तु यह ईश्वर की वह्य है कि जो बताती है कि यह हानिकारक है, इनसे बचना चाहिए। यह केवल एक उदाहरण है, इसके अलावा कुछ और भी ऐसे उदाहरण हैं, जिनपर चिंतन-मनन करने पर विश्वास हो जाता है कि जीवन की कुछ ऐसी ही सच्चाइयां हैं, जिनके बारे में ज्ञान प्राप्त करना बहुत महत्वपूर्ण है। और यह ज्ञान इन्द्रियों के द्वारा ही नहीं बल्कि इसके लिए बुद्धि और ज्ञान से बढ़कर वह्य से मार्गदर्शन लेना अनिवार्य है। वह्य और बुद्धि में कोई टकराव नहीं है। दोनों एक-दूसरे के बैरी नहीं हैं। वह्य बुद्धि की सहायता करती है। जहां बुद्धि काम नहीं करती, वहां वह्य काम आती है। वह्य बुद्धि को आगे बढ़ाती है।

हमने किसी संदेष्टा पर वह्य आते देखी नहीं है। हम किस तरह मान लें कि वह्य और संदेष्टा सत्य हैं? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए हमें संदेष्टाओं के जीवन, उनके संदेश और उनकी दी गयी शिक्षाओं का अध्ययन करना होगा, उनकी बातों में जो सत्य है, जो मार्गदर्शन और रहनुमाई है उसको परखना होगा। अन्तिम संदेष्टा हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) हमारे बीच मौजूद नहीं हैं, परन्तु उनकी शिक्षाएं और मार्गदर्शन और उनका विशुद्ध जीवन सब मौजूद है। उन्होंने मानव-समाज को जिस तरह बदला, और वे जो सामाजिक परिवर्तन लाए, यह नमूना भी विश्व के सामने है। हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) इतिहास के पूरे प्रकाश में आए, इसलिए इनकी पूरी शिक्षा सुरक्षित है।

□□

ईशदूतत्व की मौलिक धारणा

■ डॉ॰ मुहम्मद अहमद

मनुष्य सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ और अनुपम ईश-रचना है। इस धरती के प्राकृतिक, भौगोलिक और अन्य उपादानों पर नज़र डालें, तो सुगमतापूर्वक यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि सृष्टि में जो चीज़ें हैं, वे सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य के हितार्थ बनायी गयी हैं। सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, वायु, जल, फल, अन्न इत्यादि चीज़ों की मौजूदगी सिर्फ़ ईश्वर की उदारता और उसकी तत्त्वदर्शिता का ही एक भाग है।

ईश्वर ने मानव-जीवन को बाक़ी रखने के लिए जहां अनेक वस्तुओं और साधनों को पैदा किया, वहीं उसकी आध्यात्मिक और आत्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति का भी प्रबन्ध किया। इस स्थिति में वह दयावान ईश्वर मनुष्य को संसार में भटकने के लिए नहीं छोड़ सकता था, क्योंकि उसके सामने मानव-रचना का प्रयोजन था और है; इसलिए उसने मनुष्य को इरादे की शक्ति प्रदान करते हुए इस जीवन और संसार को परीक्षा-स्थली बनाया। उसने मनुष्य को कर्म और इरादे की स्वतंत्रता दी कि वह चाहे तो सुकर्म करके अपने लोक और परलोक को सफल बनाए और अगर चाहे तो कुकर्म करके अपने लोक-परलोक को असफल बनाए।

यह ईश्वर की महान अनुकम्पा है कि उसने मनुष्यों की रहनुमाई और मार्गदर्शन के लिए अपने पैग़म्बर और रसूल भेजे। संस्कृत में इसके लिए 'अवतार' और हिन्दी में 'सन्देशवाहक', 'सन्देष्टा' शब्द प्रयुक्त होते हैं। अब यह बात विभिन्न शोधों से स्पष्ट हो चुकी है कि रसूलों के आने (रिसालत) और अवतारों के आने (अवतारवाद) में कोई अन्तर नहीं है, अन्तर है तो केवल शब्दों का। यह बात अलग है कि भारत में इसके अर्थ को समझने में भारी भूलें हुई हैं। अक्सर यह कह और लिख दिया जाता है कि ईश्वर स्वयं अवतार लेता है, जबकि वह अजन्मा कदापि अवतार ग्रहण नहीं करता, बल्कि वह

मनुष्यों के मार्गदर्शन और उन्हें संकटों से उबारने के लिए मनुष्यों में से ही किसी विशिष्ट व्यक्ति को अपना सन्देशवाहक और पैग़म्बर बनाता रहा है।

ईश्वरीय आदेशों और शिक्षाओं में जब परिवर्तन आ जाता है, या उसमें मिलावट हो जाती है, जिसके नतीजे में समाज में बिगाड़ पैदा हो जाता है, तो ईश्वर अपने आदेशों और अपनी शिक्षाओं को अर्थात् धर्म को फिर से उसके मूल स्वरूप में अवतारों के माध्यम से लागों के सामने पेश करके उनका मार्गदर्शन करता है। लेकिन इस काम के लिए ईश्वर को स्वयं शरीर नहीं धारण करना पड़ता है, बल्कि वह यह काम अपने दूतों, पैग़म्बरों और अवतारों (सही अर्थ में) के द्वारा कराता है।

वह केवल भारत ही में अपने दूत (अवतार) नहीं भेजता रहा है, बल्कि सारी दुनिया में उसके दूत या पैग़म्बर आ चुके हैं। हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में जिन अवतारों के नाम आते हैं, उनमें से अधिकांश का सम्बन्ध भारत से है। इसे मानवता का दुर्भाग्य ही कहेंगे कि ईशदूतों और पैग़म्बरों को उनके अनुयायियों ने अज्ञानतापूर्ण श्रद्धा के कारण स्वयं उन्हीं को ईश्वर या ईश्वरत्व में ईश्वर का भागीदार बना लिया और वे भी उन्हीं उपास्यों में शामिल कर लिये गये, जिनके खण्डन और विरोध में उन्होंने सारा जीवन लगा दिया था। सारे ईशदूतों और पैग़म्बरों ने एक ईश्वर की ओर लोगों को बुलाया और अपने कथन और कर्म से मनुष्यों को सच्चाई का रास्ता दिखाया। इस पर विडम्बना यह कि लोग उन्हें ईश्वर समझ बैठे या यह मान लिया कि ईश्वरत्व में वे भी भागीदार हैं, जबकि इन बातों में कुछ भी सच्चाई नहीं है। वे तो बस ईश्वर के भेजे हुए दूत या पैग़म्बर थे, ईश्वर या कोई ईश्वरीय व्यक्तित्व नहीं।

अल्लाह के अन्तिम रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) हैं। आप (सल्ल॰) के आगमन के बारे में वेदों, उपनिषदों और पुराणों में भविष्यवाणियां पायी जाती हैं। आप (सल्ल॰) की बहुत-सी हदीसों में यह तथ्य आया है कि आपने अपनी मौलिक स्थिति की जानकारी दी और स्पष्ट किया है कि आपमें ईश्वरत्व लेशमात्र भी नहीं, बल्कि आप ईश्वर के पैग़ाम (सन्देश) को लानेवाले हैं।

प्रचलित अर्थ में अवतार से तात्पर्य है : ईश्वर का पृथ्वी पर अवतरण अथवा उतरना। दूसरे शब्दों में, ईश्वर के लौकिक शरीर धारण करने को अवतार कहते हैं। हिन्दुओं का विश्वास है कि यद्यपि ईश्वर सर्वव्यापी और

सर्वदा सर्वत्र विद्यमान है, फिर भी आवश्यकता पड़ने पर वह स्वयं अपनी योगमाया से पृथ्वी पर जन्म लेता है और उस समय तक यहां रहता है, जब तक कि उसके आने का उद्देश्य पूरा नहीं हो जाता। वैदिक साहित्य में अवतारवाद की अवधारणा पाई जाती है। अवतारवाद के प्रचलित अर्थ के समर्थकों के अनुसार ब्राह्मण ग्रन्थों तैत्तिरीय ब्राह्मण (1-1-6) और शतपथ ब्राह्मण (7-5-1-5) आदि में ब्रह्मा (प्रजापति) के अवतार ग्रहण करने का भी उल्लेख मिलता है, जबकि पुराणों विशेष रूप से श्रीमद्भागवत महापुराण और विष्णु महापुराण और अन्य हिन्दू धर्मग्रन्थों में विष्णु (नारायण) के अवतार लेने की बात आई है। विभिन्न देवताओं के अवतारों में विष्णु का अवतार ही सबसे अधिक प्रसिद्ध है।

विष्णु शब्द की व्युत्पत्ति 'विष्लृ' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है : सर्वत्र फैलना अथवा व्यापक होना। यह ईश्वर ही की एक विशेषता है, जो व्यक्तित्व में परिवर्तित हो गयी। भागवतधर्म (सम्प्रदाय) ने विशेषता को व्यक्तित्व बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। अवतारवाद इसी धर्म की देन है। इस मत को वैष्णव मत और पांचरात्र मत भी कहते हैं।

भागवत धर्म के मुख्य सिद्धांत इस प्रकार हैं : सृष्टि का उत्पादक एकमात्र ईश्वर है। इसके अनेक नाम हैं, जिनमें विष्णु, नारायण, वासुदेव, जनार्दन आदि प्रमुख हैं। वह अपनी योगमाया प्रकृति से समस्त जगत् की उत्पत्ति करता है। उसी से ब्रह्मा, शिव, विष्णु आदि उत्पन्न हुए। जीवात्मा उसी का अंश है, जो ईश्वर का सामीप्य प्राप्त करके पूर्ण होती है। समय-समय पर जब संसार पर संकट आता है, तब ईश्वर अवतार धारण कर उसे दूर करता है। ईश्वर के ऐसे अवतारों को मानना अवतारवाद कहलाता है।

यह बात बुद्धिसंगत और सत्यानुकूल नहीं लगती कि ईश्वर स्वयं लौकिक शरीर ग्रहण करे। वह तो सर्व-सामर्थ्यवान् है। उसे योगमाया की क्या आवश्यकता? अधिक बुद्धिसंगत और सत्यानुकूल बात यही हो सकती है कि ईश्वर अपने दूतों, सन्देशवाहकों, पैग़म्बरों और रसूलों को इंसानों के मार्गदर्शन के लिए भेजे और उनके द्वारा सत्य का बोल-बाला करे और असत्य को धूल-धूसरित कर दे। ऐसा ही हुआ है।

'अवतार' का सही अर्थ

वैदिक साहित्य में "अवतार" शब्द का स्पष्ट प्रयोग नहीं मिलता, बल्कि 'अवतारी' और "अवतार" शब्दों के प्रयोग संहिताओं और ब्राह्मणों में मिलते हैं। ऋग्वेद (6-25-2) में "अवतारी" शब्द आया है, जिसका अर्थ सायण ने विघ्न, संकट से पार करनेवाला बताया है। अवतारी शब्द के बाद "अवतृ" से ही बननेवाला एक दूसरा शब्द "अवत्तर" (18-3-5) में मिलता है । सायण के अनुसार अत्यन्त लक्षण में समर्थ, जिसमें सारभूत अंश हो, वही अवत्तर कहा जाता है। अथर्ववेद के सायण भाष्य में इस शब्द की जो उत्पत्ति है, रक्षा का भाव शामिल है। अवतारवाद के मुख्य प्रयोजनों में रक्षा का भी स्थान रहा है। डॉ॰ कपिलदेव पाण्डेय ने लिखा है कि "अवतर" शब्द का प्रयोग यजुर्वेद (17-6) में हुआ । इस मंत्र में "अवतर" प्रायः उतरने के अर्थ में गृहीत हुआ है।[1] जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चुका है कि "अवतर" शब्द यजुर्वेद (17-6) में आया है। इसका अर्थ ग्रिफ़िथ ने Descent बताया है। Oxford Advanced Learner's Dictionary में इसका अर्थ नीचे उतरना (Handling down) भी लिखा गया है। (पृ॰ 236)

अवतार शब्द स्वयं बता देता है कि अवतार का भावार्थ ईश्वर का पृथ्वी पर अवतरण या उतरना नहीं होता, बल्कि इस शब्द का सही भावार्थ ईश्वर द्वारा पृथ्वी पर उतारा गया होता है। अवतार का अर्थ मूलतः "उतारा गया" होता है, "उतरना" नहीं। 'अवतार' शब्द 'अव' उपसर्ग पूर्वक तृ प्लवन तरणयोः धातु से 'धञ्' प्रत्यय का योग करने पर निष्पादित होता है, जिसका अर्थ "उतारा गया" होता है। पाणिनि ने संस्कृत व्याकरण के अपने सबसे प्रामाणिक ग्रन्थ अष्टाध्यायी (3-3-120) में इस शब्द को स्पष्ट करते हुए "अवतरणं अवतारः" लिखा है, जिसका अर्थ है : "नीचे उतारा गया।" व्युत्पत्तिगत दृष्टि से "त्वृ" और "स्तृ" धातुरूपों से बननेवाले अवतार शब्द का अर्थ होता है : "वह स्थान या विग्रह जिसके माध्यम से अवतार हो और वह स्थान या विग्रह जहां से अवतरण हो।"[2] अर्थात् ईश्वर के पास से अवतार होता है। डॉ॰ वेदप्रकाश उपाध्याय का भी यही मत है। इससे स्पष्ट हुआ कि ईश्वर स्वयं अवतार ग्रहण नहीं करता, बल्कि वह संसार की गति और कार्यों में गड़बड़ी को दूर करने के लिए अपने दूत और पैग़म्बर भेजता है। दूसरे शब्दों

में, हम इसे अवतारवाद कह सकते हैं। महाभारत (339 : 64) और केन उपनिषद् (3 : 2) में "प्रादुर्भाव" "अवतार" के स्थान पर आया है, जिससे भी "अवतार" के मूल अर्थ के निकट पहुंचा जा सकता है। दुर्भाग्य से "अवतार" शब्द नितान्त ग़लत अर्थ में प्रचलित हो गया है।

विद्वानों के विचार

गायत्री समाज के प्रमुख विद्वान श्री बलराम परिहार लिखते हैं : "विपन्नता और विकृतियों की बढ़ोत्तरी होने पर जब विश्वशान्ति ख़तरे में पड़ जाती है और मानव-जाति का भविष्य अंधकारमय दिखने लगता है, तो भगवान उस असन्तुलन को दूर करने के लिए देवदूत, महामानव भेजते हैं, जो उस असन्तुलन को सन्तुलन में, अव्यवस्था को व्यवस्था में बदलने की योजनाएं बनाते और उन्हें सम्पन्न करते हैं...देवदूतों की शृंखला बहुत बड़ी है। अनादिकाल से लेकर अब तक विभिन्न क्षेत्रों में अगणित देवदूत आये हैं और उन्होंनें अपने-अपने कार्य क्षेत्रों में अपने-अपने ढंग की अस्त-व्यस्तताओं, विपन्नताओं को संभाला है।[3] विवेकानन्द जी ने भी ईश-दूतत्व की धारणा को मान्यता प्रदान की है।[4]

इंसानों के कष्ट को दूर करने के लिए विशिष्ट व्यक्तियों के आने की बात डॉ॰ पी॰ वी॰ काणे भी स्वीकार करते हैं। वे अवतारवाद का परिचय कराते हुए लिखते हैं : "भारतीय अवतार सिद्धान्तों युगों और मन्वन्तरों[5] के सिद्धान्त से संबंधित है। जब संसार गंभीर क्लेश में पड़ जाता है, तब मनुष्यों को ऐसा विश्वास होता है कि परमात्मा के अनुग्रह से मुक्ति आयेगी (अर्थात् छुटकारा मिलेगा) और उनका यह विश्वास सत्य-सा प्रकट हो जाता है—जब कोई विशिष्ट व्यक्ति किसी उदात्त (ऊँची) भावना से प्रेरित होकर किसी विशिष्ट काल में किसी विशिष्ट स्थान पर आविर्भूत हो जाता है।"[6] श्री रामकृष्ण परमहंस ने भी ईश-दूतत्व के सिद्धान्त को स्वीकार किया है और कृष्ण जी को ईश्वर का दूत माना है।[7]

वरिष्ठ विद्वान डॉ॰ सुरेन्द्र 'अज्ञात' लिखते हैं :

"एक दूसरी दृष्टि से भी ईश्वर का स्वयं अवतार धारण करना पूरी तरह असंभव है। यजुर्वेद का कथन है कि ईश्वर इस संसार की प्रत्येक वस्तु में, इस

संसार में हर स्थान पर, विद्यमान है—ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् (यजुर्वेद, 40 : 1) अब जब ईश्वर संसार के कण-कण में पहले से ही विराजमान है तब फिर वह अवतार क्यों और कैसे धारण कर सकता है? यदि एक सर्वव्यापक ईश्वर हर स्थान पर, हर वस्तु में पहले से ही विद्यमान है, तो वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर आ-जा कैसे सकता है? सर्वव्यापक होने से वह पहले से ही सर्वत्र मौजूद है। इस तरह हम देखते हैं कि ईश्वर को सर्वव्यापक मानना न केवल उसे अवतार लेने से रोकता है, बल्कि उसकी सर्वशक्तिमत्ता को भी प्रश्नचिह्नों से मंडित करता है।

इस सारी परिचर्चा से यही प्रमाणित होता है कि जो लोग ईश्वर को सर्वव्यापक मानते हैं, वे अवतारवाद को किसी प्रकार भी तर्कसंगत नहीं सिद्ध कर सकते। दूसरे, जो लोग ईश्वर को इस संसार के बाहर सातवें आसमान पर स्वीकार करते हैं, वही अवतारवाद को निर्विवाद तौर पर मान सकते हैं। तीसरे, उस अवतारवाद में भी ईश्वर का स्वयं अवतार लेना उतना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता, जितना उसका किसी अन्य को प्रेषित करना क़ायल करता है। इस तरह यह अवतारवाद एक तरह से रिसालत ही बन जाता है। इस तरह स्पष्ट है कि करण और अधिकरण कारकों के अर्थ में भी ईश्वर का स्वयं अवतार लेना सिद्ध नहीं होता।[8]

लेखक की पुस्तक 'अवतारवाद और रिसालत' पर प्रतिक्रिया प्रकट करते हुए प्रख्यात पत्रकार विद्याप्रकाश जी लिखते हैं कि विभिन्न आस्था के विकारों में अवतारवाद का ग़लत अर्थ शामिल है। वे कहते हैं कि संसार में पवित्र क़ुरआन सहित अनेक ऐसे धर्मग्रन्थ हैं, जिनमें एकेश्वरवादी विचारधारा की अवधारणा पायी जाती है। सही अर्थवाला अवतारवाद ही ग्राह्य होना चाहिए।

सारंगपुर (म॰प्र॰) के विद्वान संत श्री सत्य ने लिखा है कि "अवतारवाद ईश्वर के सामर्थ्य एक चुनौती है। इससे अकर्मण्यता को बढ़ावा मिलता है। अवतारवाद के नाम पर शताब्दियों से लोगों का शोषण किया जा रहा है।"

श्री द्वारिका प्रसाद साहू लिखते हैं :

"हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं हो रहा है कि ईश्वर का इस संसार में पैदा होकर अवतार लेने की बात पूरी तरह कपोल-कल्पित है। यह सच्चाई है कि मनुष्य जब-जब सत्य धर्म से विमुख हुआ, सर्वशक्तिमान ईश्वर ने अपने

पथ-प्रदर्शक, पैग़म्बर भेजे, जो मानव को एक ईश्वर की उपासना की शिक्षा दिया करते थे। पैग़म्बरों के सिलसिले में अंतिम ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) हैं। आप पर रिसालत का सिलसिला ख़त्म कर दिया गया। रहती दुनिया तक इस्लाम मानवों का सीधा मार्ग बना रहेगा?[9]

पवित्र क़ुरआन में आया है : "कोई समुदाय ऐसा नहीं गुज़रा, जिसमें कोई सचेत करनेवाला न आया हो।" (25: 24) एक अन्य स्थान पर है : "और हमने हर क़ौम में एक पैग़म्बर भेजा, जिसने सन्देश दिया कि ईश्वर कि बन्दगी करो, बढ़े हुए फ़सादी की बन्दगी न करो।" (16 : 36)

इस विवेचन से ज्ञात हुआ कि ईश्वर प्रत्येक काल, युग और समुदाय में अपने दूतों, पैग़म्बरों और अवतारों (सही अर्थ में) को भेजता रहा। बन्दों से प्रेम के कारण उसने ऐसा किया। शांडिल्य भक्ति (49) में कहा गया है :

मुख्य तस्य हि कारुण्यम्

अर्थात्, उसकी करुणा ही इसका मुख्य कारण रही।

लेकिन ईश्वर सदैव अपने पैग़म्बर को भेजने के लिए बाध्य नहीं है। यह उसकी इच्छा पर निर्भर है। वह स्वतंत्र और सर्वशक्तिमान सत्ता है, उस पर किसी का वश नहीं चलता।[10] वह जब तक चाहे अपने पैग़म्बर (अवतार) भेजता है और जब चाहे यह सिलसिला समाप्त कर देता है।

गीता और अवतारवाद

श्रीमद् भगवद्गीता में कृष्ण जी ने स्पष्ट रूप से अवतारवाद का प्रतिपादन किया है ? ऐसा अनेक विद्वानों का मानना है, लेकिन ऐसे लब्ध-प्रतिष्ठ लोग भी मिल जाते हैं, जो इसे नहीं स्वीकार करते। इसके समर्थक वही हैं जो अवतार का अर्थ समझने में भूल करते हैं। इसके समर्थन में गीता (4 : 7) का प्रायः यह श्लोक प्रस्तुत किया जाता है :

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमूधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।7।

शंकरानन्द ने इस श्लोक का अनुवाद इस प्रकार किया है : "जब-जब वैदिक धर्म का ह्रास होता है, वर्णाश्रम धर्मावलम्बियों के अभ्युदय और

निःश्रेयस (कल्याण) के लिए तब-तब मैं धर्म-रक्षण और अधर्म-विनाश के योग्य शरीर को धारण करता हूं।"[11]

इस अनुवाद से स्वयमेव स्पष्ट है कि इसमें सच्चाई से काम नहीं लिया गया है। वैदिक धर्म और वर्णाश्रम धर्मावलम्लियों की भी बात अनावश्यक रूप से आयी है। इस श्लोक में अगले श्लोक की पहली पंक्ति को शामिल करके स्वामी मंगलानन्द पुरी इसका अनुवाद उपर्युक्त अनुवाद से हटकर करते हैं। पुरी जी 'प्राचीन भगवद्गीता', जिसमें मात्र 70 श्लोक हैं, के 21वें श्लोक में **"परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्"** पंक्ति को सम्मिलित करते हैं। वे इस गीता को ही मूल बताते हैं। वे आज की सर्वाधिक प्रचलित 700 श्लोकी गीता को नहीं मानते। वे सबसे पहले इस श्लोक की 'संगति' इस प्रकार स्पष्ट करते हैं :

"अब यह बतलाते हैं कि किन दशाओं में श्री कृष्ण जी या ऐसे महान योगी लोग संसार में आकर जन्म लेते हैं।"[12]

उन्होंने इस श्लोक का जो अनुवाद किया है, वह इस प्रकार है :

"हे भारत (अर्जुन) ! जब-जब धर्म की (संसार में) कमी और अधर्म की ज़्यादती हो जाती है, तब-तब मैं साधुओं की रक्षा करने और दुष्टों का नाश करने के लिए अपने को सृजता हूं ।[13] इसी तरह की बात महाभारत के वनपर्व (272-71) और आश्वमेधिक पर्व (54-13) में भी मिलती है।

गीता के इस श्लोक की व्याख्या करते हुए पुरी जी लिखते हैं : "अवतारवादी महाशय गण इसी श्लोक का प्रमाण अपनी पुष्टि में लगाते हैं, परन्तु यहां परमेश्वर के शरीरधारी बनने की कोई बात नहीं कही गयी।

(1) इस पर यह श्रुति है :

"आप्त कामस्य स्पृहा।"

अर्थात्, जो आत्मज्ञानी हैं, उनको कुछ भी किसी काम के फल से प्रयोजन नहीं है।

(2) "मुझ" से अभिप्राय "ब्रह्म परमात्मा" से है। श्री कृष्ण जी ने परमात्मा के स्थान में अपने को क्यों कहा? इसका उत्तर यह है कि श्री कृष्ण जी परम योगी थे, इस कारण वे परब्रह्म में इतने लीन थे कि अपने को उससे भिन्न

नहीं देखते थे। ऐसे पूर्ण योगी महात्मागण इसी प्रकार दीक्षा करते हैं, इसका प्राचीन प्रमाण भी मिलता है :

बृहदारण्यक उपनिषद् में आया है कि वामदेव ऋषि ने कहा था कि सूर्य में जो पुरुष प्रकाश दे रहा है, वह मैं हूं। मूल वाक्य यह है :

तद्धैतत् प्रश्यन्नृषिर्वामदेवः प्रतिपेदेऽहं मनुर्भव सूर्य्यश्चेति
तदिदमत्येतर्हिय एवं वेदाह ब्रह्मास्मीति।

—बृहदारण्यक उपनिषद् (1-4-10)

श्री लोकमान्य तिलक महाराज ने अपने "गीता रहस्य" के नवें प्रकरण में पृष्ठ 232 पर लिखा है : "व्यक्त अथवा अव्यक्त सगुण ब्रह्म की उपासना से ध्यान के द्वारा धीरे-धीरे बढ़ता हुआ उपासक अन्त में "अहं ब्रह्मास्मि" (बृहदारण्यक उपनिषद् 1-4-10) अर्थात् "मैं ही ब्रह्म हूं" की स्थिति में जा पहुंचता है और "ब्रह्मात्मैक्य" (ब्रह्म और आत्मा की अभिन्नता) स्थिति का उसे साक्षात्कार होने लगता है। फिर उसमें वह इतना मग्न हो जाता है कि इस बात की ओर उसका ध्यान भी नहीं जाता कि मैं किस स्थिति में हूं।" यह समाधि योग है, जिसमें द्वैत का ज़रा-सा भी लवलेश नहीं रहता।

पाठकों को ज्ञात हो कि योगीराज श्री कृष्ण जी की ऐसी ही स्थिति थी, जिसका दिग्दर्शन तिलक महाराज के ऊपरी वाक्य में कराया गया है। अतः जहां-जहां "परमेश्वर की उपासना करो" कहना उचित था, वहां-वहां कृष्ण जी ने "मेरी उपासना करो" कहा है। इसका अभिप्राय यही है कि मैं जिस ब्रह्मपरमात्मा का प्रतिनिधि हूं उसकी उपासना करो।"[14]

गीता के उपर्युक्त श्लोक की पुरी जी की व्याख्या निश्चित रूप से सत्य का अनावरण करती है। दूसरी तरफ़ श्री बलराज सिंह परिहार जी ने इसका जो अनुवाद किया है, उससे सच्चाई खुलकर सामने आ जाती है। उनका अनुवाद इस प्रकार है :

"जब धर्म की ग्लानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब साधुता के परित्राण और असुरता के निवारण के लिए मैं (पवित्र) आत्माओं का सृजन करता हूं ।"[15]

श्रीमती लज्जा आर्या ने इस श्लोक की व्याख्या करते हुए प्रभु द्वारा समाज सुधारक महापुरुषों को प्रेरणा देकर भेजने की बात लिखी है।[16] इस अनुवाद

में ईश्वर के स्वयं संसार में शरीर धारण कर आने की बात नहीं कही गयी है, बल्कि उसके द्वारा पवित्र आत्माओं का सृजन करने अर्थात् पवित्र आत्माओं को संसार में सत्यधर्म स्थापित करने और बुराइयों को मिटाने को भेजते रहने की बात है। पवित्र आत्माएं समय-समय पर संसार के प्रत्येक भू-भाग और क़ौमों में आकर लोगों का मार्गदर्शन करती रही हैं। अवतारवाद का सही अर्थ यही है।

ईश्वर जन्म अथवा अवतार नहीं लेता

ईश्वर अजन्मा है।[17] यह उसके गौरव के विरुद्ध है कि वह लौकिक शरीर धारण करे और सारे जगत का स्वामी होकर भी सामान्य जीवधारियों जैसा जीवन व्यतीत करे। इस अर्थ में उसके स्वयं अवतार लेने का वेद भी समर्थन नहीं करते। यजुर्वेद में स्पष्ट रूप से आया है :

स पर्यगाच्छक्रम कायम-व्रणमुस्नाविर शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातहतथ्यतोऽर्थान्
व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।

—यजुर्वेद (40-8)

डॉ॰ पं॰ श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है :

"वह (ईश्वर) सर्वत्र गया हुआ है। वह देहरहित, स्नायुरहित है। वह व्रणरहित है। वह पवित्र और वीर्यवान है। वह पाप से विद्ध (बिंधा) हुआ नहीं है। वह मन का स्वामी है, विचारशील है। वह सबसे श्रेष्ठ और विजयी है। वह अपनी शक्ति से स्थित है। करने योग्य कार्य वह करता रहता है।"[18]

आर्य समाज के प्रवर्तक श्री दयानन्द सरस्वती जी ने इस मंत्र की व्याख्या विस्तार के साथ की है, जिसके कुछ भाग यहां प्रस्तुत किये जा रहे हैं :

"स पर्यगात्" वह परमात्मा आकाश के समान सब जगह में परिपूर्ण (व्यापक) है; "शुक्रम्" सब जगत् का करनेवाला वही है; "अकायम्" और वह कभी शरीर (अवतार) नहीं धारण करता, क्योंकि वह अखंड और अनन्त, निर्विकार, इससे देहधारण कभी नहीं करता। उससे अधिक कोई पदार्थ नहीं है, इससे ईश्वर का शरीर धारण करना कभी नहीं बन सकता।"[19] अर्थात् इससे

भी स्पष्ट है कि ईश्वर शरीर नहीं धारण करता है।

गीता में भी ईश्वर को अजन्मा कहा गया है, किन्तु माया से उसके प्रकट होने की बात भी जुड़ी हुई है। श्लोक यह है :

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।

प्रकृदि स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्याममायया।।6।।

—श्रीमद् भगवद्गीता (4:6)

श्री जयदयाल गोयन्दका ने इसका अनुवाद इन शब्दों में किया है :

"मैं अजन्मा और अविनाशी स्वरूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियों का ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृति को अधीन करके अपनी योगमाया से प्रकट होता हूं।"[20]

गीता के इस श्लोक को भी ईश्वर के अवतार के प्रमाण के रूप में पेश किया जाता है। इस श्लोक को समझने से पूर्व "माया" (लीला) शब्द पर विचार करना उपयुक्त होगा। डॉ॰ पं॰ श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने यजुर्वेद के "मायायै कर्मारम्" (30 : 22) मंत्र की टीका में "माया" शब्द का अनेक अर्थ बताया है, जो इस प्रकार है : "हिकमत, बनावट, हस्तकौशल्य, राजनैतिक युक्ति प्रयोग, विलक्षण शक्ति अथवा बुद्धि, कला, हुनर, बुद्धि, अलौकिक शक्ति।"[21]

डॉ॰ सातवलेकर ने 'माया' का पहला अर्थ हिकमत अर्थात् तत्वदर्शिता बताया है। इस अर्थ को यदि हम इस श्लोक पर निष्पन्न करें, तो हमें सुगमता से सही अर्थ प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार इसका अनुवाद होगा कि मैं अपनी हिकमत को प्रकट करता हूं या मैं अपनी हिकमत से प्रकट होता हूं। इसमें स्वयं ईश्वर के शरीर धारण करने का खण्डन हो जाता है, क्योंकि हिकमत अर्थात्, तत्वदर्शिता को प्रकट करने से तात्पर्य है : अपना तत्वज्ञान व्यक्त करना और हिकमत से प्रकट होने से तात्पर्य है : उसके तत्वज्ञान से कोई चीज़ प्रकट हो, क्योंकि ईश्वर किसी प्रयोजन के लिए जब हिकमत करता है, तो उसे कार्य-रूप देने के लिए उसमें स्वयं लिप्त नहीं होता। यजुर्वेद में है :

तत् एजति तत् न एजति। (40 : 5)

डॉ॰ सातवलेकर के शब्दों में इस मंत्र का अनुवाद यह है :

"वह दूसरों को चलाता है, पर स्वयं हिलता नहीं।"[22] वह स्थिर है।[23] (यजुर्वेद 40 : 4) यह अवश्य है कि उसका प्रताप और तेज चतुर्दिक फैला हुआ है।[24]

बौद्ध और जैनधर्म में ईशदूतत्व

अवतारवाद के अर्थ को समझने में कुछ अन्य धर्मों के साहित्य में भ्रान्तियां पाई जाती हैं, जहां तक बौद्धधर्म का सम्बन्ध है, उसकी प्राचीन पुस्तकों में अवतारवाद का परवर्ती अर्थ नहीं मिलता है। बौद्धधर्म के परवर्ती साहित्य में जो अवतारवाद का अर्थ पाया जाता है, उस पर बौद्ध विद्वानों की भारी आपत्ति है। इस धर्म में ईशदूतत्व मौजूद है और बोधिसत्व की मान्यता इसी पर आधारित है। विजयतोष भट्टाचार्य लिखते है :

मैत्रेय को भावी और अंतिम बुद्ध बताया गया है। इनके बारे में कहा गया है कि वे स्वर्ग में निवास कर रहे हैं[25] और बुद्ध जी के देहावसान के एक हज़ार वर्ष बाद अवतरित होंगे। पं॰ वेद प्रकाश उपाध्याय हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के आगमन को इस भविष्यवाणी की निष्पन्नता सिद्ध करते हैं।[26]

भारत के कुछ बौद्ध संगठनों ने बुद्ध जी को विश्व हिन्दू परिषद् द्वारा विष्णु का अवतार बताने पर कई बार आपत्तियां प्रकट की हैं। मेरठ के आनन्द प्रकाश बौद्ध का कहना है कि बौद्धधर्म में अवतारवाद (प्रचलित अर्थोंवाला) नहीं है। हिन्दू लेखकों ने बौद्धधर्म को तोड़-फोड़ कर उसकी मूलता नष्ट कर दी है।[27]

जैनधर्म में तीर्थंकरों की कल्पना है, किन्तु इनके वादी रूप, रामायण, महाभारत और हरिवंशपुराण के प्रभावाधीन होकर विशेष रूप से जैन पुराणों में पाए जाते हैं।

डॉ॰ पी॰ एच॰ चौबे ने लिखा है—

"मैं मुहम्मद (सल्ल॰) को कल्कि अवतार मानता हूँ। पुराणों में इस अवतार (पैग़म्बर) का वर्णन है। कहा गया है कि कल्कि अवतार बुद्धावतार के बाद होगा, जिसका जन्म शम्भल नामक नगर में एक पुजारी परिवार में होगा, उसकी सवारी घोड़ा और हथियार तलवार होगा। वह सम्पूर्ण पृथ्वी पर अपने सत्य धर्म की विजय करेगा।" (विस्तृत विवरण के लिए देखें कल्कि पुराण)

जैनधर्म के ग्रंथकारों ने भी कल्कि अवतार का वर्णन किया है और उसके आने का काल महावीर स्वामी ने निर्वाण के एक हज़ार वर्ष बाद माना है। महावीर स्वामी के निर्वाण का वर्ष प्राय 571 ई॰ पू॰ निश्चित किया जाता है। इस प्रकार एक हज़ार वर्ष बाद कल्कि अवतार का आगमन होता है। हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) का जन्मकाल वही वर्ष पड़ता है, जो कल्कि अवतार के आने का काल है। कल्कि अवतार की अन्य विशेषताएँ और उसके गुण हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) से साम्यता रखते हैं। एक प्रसिद्ध जैन लेखक जिसने अपने ग्रंथ हरिवंश पुराण में लिखा है कि महावीर के निर्वाण के 605 वर्ष 5 माह बाद शकराज का जन्म हुआ तथा गुप्त संवत 231 वर्ष के शासन के बाद कल्कि अवतार का जन्म हुआ। इस आशय का श्लोक इस प्रकार है–

"…..गुप्तानां चश्त द्वयम।

एक विंवश्च वर्षणि कालविद् भिरुदा हृतम।।490।।

चित्वा रिंश देवातः कल्किराजस्य राजता।

ततोड जिटंजयों राजा स्यादिन्द्रपुर संस्थितः।।491।।

–जिनसेन कृत हरिवंश पुराण अ॰ 60

दूसरे जैन ग्रंथकार गुणभद्र ने उत्तर पुराण में लिखा है कि महावीर निर्वाण के 1000 वर्ष बाद कल्किराज का जन्म हुआ। (Indian Antiquary Vol. X, V.P. 143)

तीसरे जैन ग्रंथकार नेमिचन्द्र अपने ग्रंथ 'त्रिलोकसागर' में लिखते हैं, "शकराज निर्वाण के 605 वर्ष 5 माह बाद तथा शककाल से 394 वर्ष 7 माह पश्चात कल्किराज पैदा हुआ।" इस ग्रंथ में इस भाव का वाक्य है–

"पणछस्सयं वस्संपण मासजदं गमिय वीर णिवुइ दो।
सगराजो सो कल्कि चतुणवतिय महिप सगमासं।।"

–त्रिलोकसार, पृ॰ 32

इस प्रकार ऐसा लगता है कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) वही थे, धर्माचार्यों ने जिनके बारे में बताया।

सचमुच जिस प्रकार जब तक एक शासक शासन करता है, तब तक उसके द्वारा बताए नियम का पालन जनता करती है, परन्तु उसके शासन के

समाप्त होते ही दूसरे शासक के आदेशों को लोग शिरोधार्य करते हैं, ठीक उसी प्रकार जब तक जिस शास्ता, अवतार, पैग़म्बर का काल रहता है उसकी आज्ञाओं-उपदेशों का फैलाव होता है परन्तु उसके उपदेशों में विकृति आते ही ईश्वर की तरफ़ से जब दूसरा पैग़म्बर, अवतार आता है, तो उसका शासन चलता है। इस लिहाज़ से आज हम हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) अन्तिम 'रसूल' अथवा आख़िरी अवतार 'कल्कि' के 'शासन काल' में हैं और अब प्रलय (क़ियामत) तक उनका शासन रहेगा, जिसका प्रमाण पुराण, क़ुरआन और अन्य ग्रन्थ दे चुके हैं। अतएव हमारे लिए इस अन्तिम शास्ता (हज़रत मुहम्मद) के ही 'शासन' में रहकर आपके उपदेशों व आचारों का अनुगमन करना ही आध्यात्मिक और व्यावहारिक दोनों पक्षों से उचित है। इससे हमारा संसार व परलोक दोनों सुधर सकता है।

अतः अन्तिम संदेष्टा, पैग़म्बर, 'कल्कि अवतार' हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के उपदेशों का अनुगमन ही आपके प्रति सही एवं सच्चे अर्थों में श्रद्धा-अर्पण होगा। यही ईश-समर्पण के लिए सच्चा मार्ग होगा''।[24]

इस्लाम में ईशदूतत्व (रिसालत)

इस्लाम[25] अवतारवाद की इस धारणा के सर्वथा विरुद्ध है कि ईश्वर स्वयं धरती में अवतरित होता है। उसकी दृष्टि में ईश्वर किसी प्रयोजन से किसी भी प्राणी का रूप नहीं धारण करता और न किसी कार्य के लिए शरीर धारण करने के लिए वह बाध्य है। उसने जब अपनी इच्छा-शक्ति ही से इतनी विशाल सृष्टि की रचना कर दी, तो किसी कार्य के लिए उसको शरीर धारण करने की क्या आवश्यकता पड़ सकती है? फिर यह बात कितनी असंगत और अनौचित्यपूर्ण है कि केवल एक भू-भाग और वह भी कुछ विशिष्ट लोगों को दुखों और संकटों से छुटकारा दिलाने के लिए ईश्वर को विभिन्न रूपों और प्रकारों में अवतार ग्रहण करना पड़े और उसका भी एक लम्बा सिलसिला हो। इस्लाम किसी भी तरह से इसका समर्थन नहीं करता।

प्रश्न यह उठता है कि क्या अवतार (प्रचलित अर्थ में) के स्थान पर इस्लाम की दृष्टि में कोई ऐसी व्यवस्था है, जिससे सारे संसार के मनुष्यों का मार्गदर्शन होता हो? इस व्यवस्था को जानने से पहले यह समझ लेना उचित प्रतीत होता है कि इस्लाम की ईश्वर के सम्बन्ध में मौलिक धारणा क्या है?

"अल्लाह" शब्द का अर्थ

इस्लाम विशुद्ध एकेश्वरवादी धर्म है, अर्थात् उसकी यह धारणा है कि सम्पूर्ण जगत् का एक ही ईश है और वही एकमात्र पूज्य एवं उपास्य है। इस्लामी शब्दावली में इस पूज्य-प्रभु को "अल्लाह" कहा जाता है। परन्तु "अल्लाह" का शाब्दिक अर्थ क्या है? इसे भी जान लेना उचित होगा। "अल्लाह" शब्द का अर्थ-निरूपण मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने अपनी पुस्तक "तफ़्सीर सूर फ़ातिहा" में निम्नलिखित शब्दों में किया है :

"सामी भाषाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि व्यंजनों और स्वरों का एक मुख्य समूह है, जो "पूजित" के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है। इबरानी , सुरयानी, कलदानी, हमीरी, अरबी आदि भाषाओं में उसका यही शाब्दिक गुण पाया जाता है। यह 'अलिफ़', 'लाम' और 'हे' का धातु है। कलदानी और सुरयानी का 'अलाहिया' इबरानी का 'उलूह' और अरबी का 'इलाह' इसी से बना है और निस्सन्देह यही 'इलाह' है, जो 'अलिफ़' और 'लाम' अक्षरों के बढ़ा देने से 'अल्लाह' हो गया है, और इस प्रयोग ने 'अल्लाह' नाम को उस सत्ता के लिए विशिष्ट कर दिया है, जो सम्पूर्ण सृष्टि का रचयिता है। परन्तु यदि 'अल्लाह' 'इलाह' से बना है तो 'अल्लाह' का अर्थ क्या है? इसके सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न कथन हैं। परन्तु सबसे अधिक प्रबल पक्ष यह ज्ञात होता है कि इस नाम का उद्गम शब्द 'अलह' है। 'अलह' का अर्थ चकित व विवश हो जाना है। कुछ ने कहा कि 'अल्लाह', 'वलह' शब्द से बना है। इसका अर्थ भी यही है। अतः सृष्टि के रचयिता का नाम 'अल्लाह' इसलिए हुआ कि इस सत्ता के विषय में मनुष्य जो कुछ जानता है और जान सकता है वह इससे अधिक और कुछ नहीं है कि बुद्धि चकित रह जाए और उसकी वास्तविकता को समझने के लिए विवश हो जाए।"

"अल्लाह" शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए मौलाना अबू मुहम्मद इमामुद्दीन 'रामनगरी' लिखते हैं : " 'इलाह' का अर्थ है : पूज्य। इसलिए 'इलाह' प्रत्येक उस व्यक्ति, जीव और निर्जीव वस्तु को कह सकते हैं जिसकी पूजा की जाए। इस 'इलाह' शब्द में 'अलिफ़' और 'लाम' संयुक्त कर 'अल्लाह' कर देने का अभिप्राय यह है कि एक ईश्वर ही पूज्य है। इसके अतिरिक्त कोई पूजा और उपासना का अधिकारी नहीं है।"[30]

'अल्लाह' शब्द में यह विशि-ट गुण निहित है कि उसका प्रयोग एक ही उपास्य-प्रभु के लिए हो सकता है। भाषा विज्ञान के अनुसार, उसके सिवा किसी अन्य के लिए इसका प्रयोग नहीं हो सकता। इस शब्द का न तो कोई बहुवचन है और न ही इसका कोई लिंग (Gender) है। इस शब्द का सटीक हिन्दी अनुवाद 'ईश्वर' इसलिए नहीं हो सकता, क्योंकि यह शब्द भगवान्, देवी-देवता, देव, विशिष्ट पुरुष अथवा जीव आदि उपास्यों के लिए भी भाववाचक रूप में प्रायः प्रयुक्त होता है। यह ज़रूर है कि काम चलाने अथवा समझने-समझाने के लिए 'अल्लाह' का अनुवाद 'ईश्वर' किया जा सकता है। वैसे सारे अच्छे नाम अल्लाह ही के लिए हैं। एक हदीस के अनुसार अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने अल्लाह के लिए 99 नामों का उल्लेख किया है।

ईशदूतत्व की ज़रूरत

अल्लाह ने विशाल सृष्टि की रचना की और इसमें सर्वश्रेष्ठ प्राणी—मनुष्य को पैदा किया। मनुष्य के जीवन के लिए आवश्यक चीज़ों की व्यवस्था की। हवा, पानी, अन्न, फल आदि के प्रबन्ध किए। अल्लाह ने यह सब सोद्देश्य किया है। यह उसके गौरव और प्रताप के विरुद्ध बात है कि किसी निरुद्देश्य चीज़ की रचना करे। यह भी बुद्धि-विवेक से परे बात है कि अल्लाह वह उद्देश्य मनुष्य को न बताए, जिसके अन्तर्गत उसने मनुष्य को पैदा किया है। मनुष्य को अपने ज्ञान और विधान की जानकारी न दे और उसे जीवन जीने और बरतने की शिक्षा न दे एवं उसे यूं ही भटकता छोड़ दे।

अल्लाह ने मनुष्यों पर अनगिनत उपकार किए हैं। मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ प्राणी बनाकर उसे जानने, सोचने और समझने की शक्तियां व क्षमताएं प्रदान कीं। मनुष्य को पैदा करने के उद्देश्य बताए। अपना ज्ञान प्रदान किया और सिर्फ़ अल्लाह का बन्दा बनकर जीवन बिताने का निर्देश दिया। साथ ही उसने मनुष्य को अच्छे-बुरे की समझ प्रदान की और चयन व इरादे की स्वतंत्रता देकर धरती में उसे अपना ख़लीफ़ा बनाया। यह विशिष्ट पद सिर्फ़ मनुष्य को प्रदान किया गया है। इस पद पर नियुक्त करते समय उसने मनुष्य को भली-भांति बता दिया कि तुम्हारा एकमात्र उपास्य मैं हूं। मैं सारे जगत का नियन्ता, स्वामी और सम्राट हूं। मेरे राज्य में किसी की भी कोई भागीदारी और दख़ल नहीं है।

अल्लाह ने मनुष्य को बता दिया कि यह सांसारिक जीवन तुम्हारे लिए एक परीक्षा की अवधि है, जिसके पश्चात् तुम्हें मेरे पास लौटना होगा और मैं तुम्हें परीक्षा-फल दूंगा। अतः तुम मेरे आज्ञाकारी (मुस्लिम) बनो। यदि तुम ऐसा करोगे तो तुम्हें संसार में भी अम्न और इत्मीनान प्राप्त होगा और जब मेरे पास पलटकर आओगे, तो शाश्वत जीवन और प्रसन्नता प्राप्त होगी। तुम्हारा प्रवेश जन्नत (स्वर्ग) में होगा और यदि मेरी अवज्ञा की, तो परलोक में तुम दुख, कष्ट और मुसीबत के उस गढ़े में फेंक दिए जाओगे जिसका नाम जहन्नम (नरक) है।

मनुष्य कितना कृतघ्न है

अल्लाह ने मनुष्य को उसका मौलिक और वास्तविक जीवनोद्देश्य बताकर धरती में मानव-जाति का आरंभ हज़रत आदम (अलैहिस्सलाम) और हव्वा को भेजकर किया। अल्लाह ने उन्हें जीवन बरतने के वे निर्देश भी दिए, जिनके अनुसार उन्हें और उनकी संतान को धरती में काम करना था। इस प्रकार धरती में मानव-जीवन का प्रारंभ ज्ञान के आलोक में हुआ। हज़रत आदम (अलैहि॰) और हव्वा के जीवन का तरीक़ा अल्लाह का आज्ञापालन (इस्लाम) था और वे अपनी संतान को यही सत्य-तथ्य सिखाकर गए कि अल्लाह के आज्ञाकारी (मुस्लिम) बनकर रहें। इस विवेचन से यह वास्तविकता प्रकट हुई कि इस्लाम मानव-जीवन के प्रारंभ से है और इसे माननेवालों अर्थात्, मुसलमानों के द्वारा मानव-जीवन का प्रारंभ हुआ। लेकिन बाद में लोग सत्य-मार्ग पर जमे न रह सके और सत्य-धर्म की शिक्षाएं भुलाते रहे और शरारत से उसे विकृत भी कर डाला। वे अज्ञानता में यहां तक पड़े कि अल्लाह को छोड़कर दूसरों की पूजा और आराधना करने लगे।

अल्लाह ने मनुष्य के पथ-प्रदर्शन के लिए और उसे सत्य-धर्म (इस्लाम) की शिक्षाओं को उस तक पहुंचाने के लिए रिसालत की व्यवस्था की है। रिसालत (ईशदूतत्व, पैग़म्बरी) पर ईमान इस्लाम की मौलिक धारणा है। इस्लाम के प्रथम सूत्र वाक्य (कलिमा) का दूसरा वाक्यांश है--

"मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह" (मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं)। इस्लाम में यह सूत्र-वाक्य मुस्लिम होने की पहली स्वीकारोक्ति है। पूरे कलिमे का अर्थ यह

है : अल्लाह के सिवा काई पूज्य-प्रभु नहीं और मुहम्मद (सल्ल॰) उसके रसूल हैं।

रिसालत ही वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने पालनहार की इच्छा, उसके आदेश और जीवनोद्देश्य मालूम कर सकता है। हज़रत आदम (अलै॰) से शुरू होकर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) तक रिसालत का सिलसिला पहुंचता है। जब इसका प्रबन्ध हो गया कि इस्लाम की शिक्षाएं रहती दुनिया तक बाक़ी रहेंगी और मानव-जीवन की अभीष्ट उन्नति पूरी हो गई, तो किसी रसूल, नबी, पैग़म्बर या ईशदूत भेजने की आवश्यकता न रही। ये सारे पुण्यात्मा मनुष्यों में से ही थे। सभी की शिक्षा इस्लाम थी। क़ुरआन में है—

"अल्लाह के निकट धर्म केवल इस्लाम है।" (3 : 19)

"ऐ नबी (सल्ल॰), कहो कि 'हम अल्लाह को मानते हैं, उस शिक्षा को मानते हैं जो हम पर उतारी गई है, उन शिक्षाओं को भी मानते हैं जो इबराहीम, इसमाईल, इसहाक़, याक़ूब की संतान पर उतरी थीं, और उन आदेशों को भी मानते हैं जो मूसा और ईसा एवं दूसरे पैग़म्बरों को उनके रब की ओर से दिए गए थे। हम उनके बीच अन्तर नहीं करते और हम अल्लाह के आज्ञाकारी (मुस्लिम) हैं।" (3 : 84)

रिसालत की महत्ता

अल्लाह की बन्दगी और उसके आज्ञापालन पर लौकिक और पारलौकिक जीवन की सफलता व कल्याण निर्भर है। स्पष्ट है कि आज्ञा के बिना आज्ञापालन संभव नहीं। अतः एक मनुष्य ज्यों ही अपने पालनहार का बन्दा और उसका आज्ञाकारी होने का निर्णय करेगा, तो वह अवश्य जानना चाहेगा कि अल्लाह के आदेश क्या हैं? वह किन बातों को पसन्द करता है और किन बातों को पसन्द नहीं करता? वह कौन-कौन से कर्म करे, ताकि उसके प्रति निष्ठावान रहे और किन-किन चीज़ों से बचे, ताकि उसकी अवज्ञा न हो? जब तक हमें इनकी जानकारी न होगी, अल्लाह की बन्दगी और उसकी आज्ञा के पालन की दिशा में एक क़दम भी आगे न बढ़ा सकेंगे।

आख़िर हमें इन सब बातों की जानकारी कैसे प्राप्त हो? इसके लिए हमारे पास कोई माध्यम नहीं है। मनुष्य अपनी बुद्धि और विवेक से इनकी वास्तविक

जानकारी नहीं प्राप्त कर सकता है। वह अपनी कल्पनाओं से आगे नहीं बढ़ सकता है। कल्पनाओं में यथार्थ और वास्तविकताएं हों, यह आवश्यक नहीं। दूसरी ओर हर मनुष्य की अलग-अलग कल्पनाएं होती हैं। ऐसे में मनुष्य के लिए असंभव है कि वह व्यक्तिगत और सामूहिक कोशिश करके भी वास्तविकता तक पहुंच सके। अल्लाह ने मनुष्य की भी रचना की है। वह उसकी विवशताओं से भी अवगत है। अतः उसने मनुष्य को पैदा करने के पश्चात् यूं ही नहीं छोड़ दिया कि निरुद्देश्य भटकता फिरे, बल्कि उसने उस पर अपार कृपा की और उसे जीवनोद्देश्य एवं अपनी इच्छा व शिक्षा से अवगत कराने के रिसालत यानी अपने रसूलों, नबियों और पैग़म्बरों को भेजने की व्यवस्था की। रिसालत का यह सिलसिला हज़रत आदम (अलैहि.) से प्रारंभ होकर हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) पर समाप्त होता है। अल्लाह ने इस उद्देश्य के लिए मनुष्यों में से ही अच्छे और पुण्यात्मा लोगों को अपना पैग़म्बर और सन्देशवाहक बनाया। यह तो उसके गौरव और प्रतिष्ठा के प्रतिकूल है कि धरती में खुद आए और दुखों-कष्टों से दो-चार हो।

अल्लाह ने इन्सानों पर अनगिनत उपकार, अनुग्रह और कृपाएं की हैं। उसने जगत के प्राणियों में इन्सान को सर्वश्रेष्ठ बनाया और उसे सोच-विचार एवं समझ-बूझ की क्षमता प्रदान की। उसे अपने ज्ञान और मार्गदर्शन के आलोक में भेजा। पहले इन्सान हज़रत आदम (अलैहि.) अल्लाह के पहले पैग़म्बर और ईशदूत भी थे। अल्लाह ने उन्हें हुक्म दिया कि अपनी संतान को इस्लाम की शिक्षा दें। यह उपदेश दें कि अल्लाह एक है जो तुम्हारा और सारी दुनिया का उपास्य है। उसी की पूजा, उपासना और इबादत करो, उसी के आगे सिर झुकाओ, उसी से सहायता की प्रार्थना करो और उसी की आज्ञा का पालन करते हुए भलाई और नेकी के साथ जीवन व्यतीत करो। यदि तुम ऐसा करोगे, तो इसका उत्तम पुरस्कार मिलेगा और परलोक में जन्नत (स्वर्ग) के पात्र होगे, परन्तु यदि तुमने ऐसा न किया और इरादे व अपनाने की अल्लाह द्वारा आज़ादी का दुरुपयोग करते हुए उसकी अवज्ञा की और स्वेच्छाचार किया, तो दंड मिलेगा और जहन्नम (नरक) के हवाले कर दिए जाओगे।

हज़रत आदम (अलैहि.) के दुनिया से चले जाने के बाद उनकी संतान ने कुछ अवधि तक तो इस्लाम की कल्याणकारी शिक्षाओं का अनुगमन किया, परन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया, वह शिक्षाओं से विचलित होती चली गई।

धीरे-धीरे लोगों में नैतिक और धारणा संबंधी बुराइयां पैदा हो गईं। तौहीद (एकेश्वरवाद) के स्थान पर शिर्क (बहुदेववाद) का चलन हुआ। इसके अनेक रूप बन गए। मूर्तिपूजा के साथ ही प्रकृति पूजा भी शुरू हुई और पेड़, पर्वत, सूर्य, चन्द्रमा, हवा, पानी आदि की पूजा होने लगी। आदम (अलैहि॰) की संतान दुनिया के विभिन्न भू-भाग में फैल गई और उसके अन्दर इतनी पतनशीलता आ गई कि उसने अच्छी बातों को बुरा और बुरी बातों को अच्छा समझ लिया गया।

अल्लाह ने इन्सानों की यह दुर्दशा देखी, तो उसने उनपर उदार-अनुग्रह किया और उनके सुधार व मार्गदर्शन के लिए फिर अपने पैग़म्बर, रसूल, नबी, ईशदूत भेजे। ये पुण्यात्मा और महापुरुष लोगों को वही शिक्षा देते थे, जो हज़रत आदम (अलैहि॰) ने अपनी संतान को दी थी। दुनिया के प्रत्येक भू-भाग में अल्लाह के पैग़म्बर आए और लोगों को अल्लाह की मर्ज़ी पर चलकर जीवन बिताने का तरीक़ा बताया। अंधकार से प्रकाश की ओर उन्मुख किया और उन्हें सीधा मार्ग दिखाया। परन्तु इन्सान का हाल भी अजीब है। उन्होंने अल्लाह के पैग़म्बरों और रसूलों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया, जो उनके सुधार के लिए आए थे। उन्हें बुरी तरह प्रताड़ित किया, यहां तक कि किसी को देश से निकाला, तो किसी की हत्या कर दी गई। लेकिन अल्लाह के भेजे हुए महापुरुषों का मिशन चलता रहा। लोगों को उनकी बातें समझ में आने लगीं और वे रसूलों और महापुरुषों के अनुयायी बनकर अल्लाह का आज्ञापालन करने लगे। इस प्रकार इस्लाम दुनिया में फैला। सभी रसूलों, पैग़म्बरों और महापुरुषों की शिक्षाएं इस्लाम ही की शिक्षाएं थीं। इनके दुनिया से चले जाने के बाद सदैव ऐसा होता रहा कि उनके अनुयायियों ने अज्ञानतापूर्ण श्रद्धा और अंधविश्वास के कारण स्वयं उनको ही ईश्वर, ईश्वरपुत्र या ईश्वरत्व में साझी बना डाला और वे भी उन्हीं उपास्यों में शामिल कर दिए गए, जिनके खंडन में उन्होंने अपना सारा जीवन लगा दिया था। यह विडम्बना ही है कि जिन बुराइयों के ख़ात्मे के लिए उन्होंने अपनी क़ुर्बानियां दीं और मानवता के उत्थान में लगे रहे, लोगों ने उन्हीं बुराइयों को फिर से पैदा करके मानवता को पतन के मार्ग पर डाल दिया। अल्लाह के पैग़म्बरों और रसूलों की शिक्षाएं विकृत कर दी गईं और मनगढ़ंत बातें एवं अकल्याणकारी चीज़ें फैला दी गईं।

मानव-सभ्यता के विकास के साथ ही जन-सुविधाओं का भी विकास हुआ। आवागमन के रास्ते बने, यातायात के साधन बढ़े। दुनिया की विभिन्न क़ौमें और विभिन्न क्षेत्रों में रहनेवाले इन्सानों के बीच संपर्क बढ़ा। जलमार्ग खोजे गए और व्यापार के साथ ही आचार-विचार का आदान-प्रदान होने लगा। अब वह समय आ गया कि यदि सारी दुनिया के लिए ईश्वरीय जीवन-व्यवस्था भेजी जाए, तो वह दुनिया के लिए काफ़ी हो जाए, और सारी दुनिया के लोगों को संबोधित करके दो टूक अन्दाज़ में यह बता दिया जाए कि इन्सानों के जीवन का उद्देश्य क्या है? उनका सहज-स्वाभाविक धर्म कौन-सा रहा है और है? अल्लाह की इच्छा क्या है? इन्सान को पैदा करने का उद्देश्य क्या है? इन्सान अपने पालनकर्त्ता-प्रभु की प्रसन्नता और निकटता कैसे प्राप्त कर सकता है? आदि-आदि।

इसके लिए सर्वशक्तिमान अल्लाह ने अपने अंतिम प्रिय पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को अरब प्रायद्वीप में भेजा और आप (सल्ल०) पर नुबूवत के (ईशदूतत्व) सिलसिले को समाप्त कर दिया। अरब में मुहम्मद (सल्ल०) को भेजे जाने का एक कारण यह भी था कि अरब संसार में ऐसी जगह पर है, जहां से एशिया, अफ़्रीक़ा और यूरोप सब निकट हैं। अरब इन सबके मध्य स्थित है। यहां से पूरी दुनिया को संबोधित करने की सुगमता भली-भांति समझी जा सकती है। अल्लाह ने आप (सल्ल०) को इस्लाम की पूरी शिक्षा और विधान देकर इसलिए भेजा कि अब रहती दुनिया तक अल्लाह का भेजा हुआ धर्म—इस्लाम—दुनिया के सभी इन्सानों को जीवन का सीधा मार्ग दिखाता रहे।

दुनिया में बहुत-से महान शासक, सुधारक, धर्म-संस्थापक और क्रांतिकारी पैदा हुए हैं, परन्तु इनका मानव-जीवन पर अपेक्षित व दीर्घकालिक प्रभाव नहीं पड़ा। दूसरी ओर जब हम बिना किसी पूर्वाग्रह के हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के जीवन और कार्यों पर नज़र डालते हैं, तो पाते हैं कि आपके अनुपम व्यक्तित्व के प्रभाव से इन्सान के व्यक्तिगत और सामूहिक कुसंस्कारों और कुप्रवृत्तियों का अंत हो गया। इन्सान की बिगड़ी प्रकृति का पूरी तरह सुधार हुआ और मानव-समाज में समग्र परिवर्तन हो गया। मस्जिद से बाज़ार, स्कूल से अदालत और घर से सार्वजनिक स्थल-सब जगह यह बदलाव दिखाई पड़ने लगा और इन्सान की चहुंमुखी उन्नति एवं नैतिकता व सद्गुणों पर आधारित जीवन की आधारशिला रखी गई।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) का जब दुनिया में शुभागमन हुआ, तो सारी दुनिया पर अज्ञानता और अंधविश्वास का अंधकार छाया हुआ था। लोग अपने वास्तविक ईश्वर को भूल गए थे और अनेक प्रकार के उपास्य बना डाले थे। मानव-सम्यता विभिन्न कुसंस्कारों में फंसकर सिसक रही थी। रहन-सहन के सुख और ठाठ-बाट ने अधिकतर लोगों को अपाहिज और निष्क्रिय कर दिया था। यूरोप के लोग सुख-सुविधा के सामान संचित करने में लगे हुए थे और भोग-विलास के चक्कर में पड़कर अपने को तबाह व बरबाद कर रहे थे। मिस्र से भारत, यूनान से चीन तक में सभ्यता का सूर्य अस्त हो चुका था। रोम और ईरान की 'महान सभ्यताएं' लोगों के साथ क्रूरता, बर्बरता और नृशंसता के घृणित बर्ताव में लिप्त थीं। कुछ शासक स्वयं को ईश्वर के रूप में प्रस्तुत कर धर्मादेश भी दे रहे थे और अपने घिनौने स्वार्थों की पूर्ति के लिए सामान्य जनता से भारी कर (Tax) वसूल कर रहे थे। उनसे रिश्वतें, नज़राने लेते और ज़बरन बिना मज़दूरी के काम कराते थे। इस दुर्दशा और अभिशाप से उन्हें छुटकारा दिलानेवाला कोई न था।

रोमी और ईरान साम्राज्यों के बीच होनेवाली लड़ाइयों के प्रभाव से आम जन अछूते न थे और अछूते रह भी नहीं सकते थे। वे जीवन की ज़रूरत की चीज़ों से वंचित थे, पर इसके लिए आवाज़ भी नहीं उठा सकते थे। अन्तःकरण की स्वतंत्रता का पूरी तरह अभाव था। इन्सान अन्धकार में डूबा हुआ था। किसी धर्म का दर्शन उसके पास प्रकाश न था कि वह उसका मार्गदर्शन करे। पैग़म्बरों और ईशदूतों की शिक्षाएं अपने सही रूप में नहीं रह गई थीं और स्वनिर्मित धर्माचार धर्मनेताओं का लाभकारी धंधा बन चुका था। उन्हें सत्ताधारी वर्ग का संरक्षण मिला हुआ था, जिससे वे धर्म के नाम पर नित नई व्याख्याएं पेश करके लोगों को ठगने से नहीं चूक रहे थे। यूनानी सभ्यता नष्ट हो चुकी थी, यहां तक यूनानियों के सुधारक कन्फ्यूशियस और मानी (Mani) की शिक्षाएं विद्यमान न रहीं। बौद्ध और वैदिक धर्म भी निष्प्रभावी थे। मानवता को इन परिस्थितियों से उबरने का कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। अतः ये परिस्थितियां सहज रूप से एक ऐसे महानतम् व्यक्तित्व की मांग कर रही थीं कि वह आए और सारी दुनिया को मानवता का पाठ सिखाए और सीधा मार्ग बताए। अल्लाह ने मानवता पर बड़ा उपकार किया और हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) को अपने अंतिम नबी की हैसियत से सारी दुनिया के मार्गदर्शन हेतु

भेजा और आप (सल्ल॰) के व्यक्तित्व में अच्छा आदर्श निहित कर दिया, जो सारे संसार के लिए अनुकरणीय और सम्पूर्ण जीवन-नीति के लिए उत्कर्ष और शिष्टता की पराकाष्ठा का यथार्थ मानदंड है। आप (सल्ल॰) ने अपने इस मिशन को भली-भांति पूरा किया, जिस पर अल्लाह ने आपको नियुक्त किया था। आपके अद्वितीय व्यक्तित्व और महान कार्यों को देखते हुए ही माइकल एच॰ हार्ट ने अपनी पुस्तक 'द हंड्रेड' में विश्व-प्रसिद्ध व्यक्तित्वों में आपको प्रथम स्थान पर रखा है। मिस्टर हार्ट ही क्या, जो भी दुर्भावना और पक्षपात से रहित होकर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की पवित्र जीवनी का अध्ययन करेगा, वह भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचेगा कि आप ही का व्यक्तित्व उभरा हुआ है और आप ही सारे इन्सानों के आदर्श हो सकते हैं।

आप (सल्ल॰) के जीवन का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि आपने अल्लाह की ओर से आए हुए प्रत्येक आदेश और मार्गदर्शन को इन्सानों तक ज्यों का त्यों पहुंचा दिया। कुछ भी छिपाया नहीं। अपनी 23 वर्षों की पैग़म्बराना ज़िन्दगी में इस बात का एक प्रमाण भी नहीं मिल सकता कि आपने ईश-आज्ञा के अनुपालन में कोई कोताही दिखाई हो। ऐसा भी होता था कि जो कुछ आपको दुनिया के सामने रखना होता था, वह माहौल (वातावरण) के लिए पूर्णतः असंगत और सुननेवालों के लिए पूरी तरह असहनीय होता था, लेकिन माहौल और सुननेवालों की भावनात्मक प्रतिक्रिया का आपने कभी मानसिक दबाव स्वीकार न किया और न सत्य के आह्वान का हित इस पर समझा कि उसके ऐसे अंशों को जिनसे लोगों के भड़क उठने की आशंका हो, उन्हें कुछ हलका करके पेश करें। एक ओर तो अरब का भू-भाग था, जो सैकड़ों उपास्यों की पूजा में लिप्त था, दूसरी ओर क़ुरआन की तौहीद (एकेश्वरवाद) की धारणा थी, जिसमें एक ईश्वर के अतिरिक्त दूसरों के लिए कोई स्थान न था। इस्लाम की शिक्षा है कि अल्लाह के सिवा कोई उपास्य नहीं है। अनेकेश्वरवाद और मूर्तिपूजा का केन्द्र बन चुके मक्का के लोगों को यह चीज़ सहन कैसे हो सकती थी? मक्का में और काबा के सामने खड़े होकर 'ला इलाह इल्लल्लाह' (अल्लाह के सिवा कोई उपास्य नहीं) का उद्घोष करना वास्तव में बड़ा कठिन कार्य था। मगर दुनिया जानती है कि आप (सल्ल॰) ने यह उद्घोष ठीक इन्हीं शब्दों में किया, प्रत्येक स्थान और अवसर पर किया और इस प्रकार किया कि लोग तौहीद (एकेश्वरवाद) के बारे में किसी भ्रांति के शिकार न हों। आपने अन्य

ईश्वरीय शिक्षाओं को भी दुनिया के सामने दो टूक अंदाज़ में ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के पवित्र जीवन का एक और महत्वपूर्ण पहलू यह है कि आपने जिस धारणा, जिस उसूल और जिस आदेश की भी इन्सानों को शिक्षा दी, उसकी अपेक्षाओं पर सबसे पहले स्वयं अमल किया। आपने अपने वचन और कर्म दोनों से सत्य का अनुपालन किया। धार्मिक आदेश का कोई अंश और इबादत का कोई पहलू ऐसा नहीं, जिसमें आपका अपना कर्म दूसरों के मार्गदर्शन के लिए आगे-आगे मौजूद न रहा है। अल्लाह ने इस बात का आदेश भी दिया था—

"(ऐ नबी) इनसे कहो, मुझे आदेश दिया गया है कि धर्म को अल्लाह के लिए विशुद्ध करके उसकी बन्दगी करूं, और मुझे आदेश दिया गया है कि सबसे पहले मैं स्वयं मुस्लिम (आज्ञाकारी) बनूं।" (क़ुरआन 39 : 11,12)

---

1. मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पृ॰-4
2. नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली संस्करण, 20 मई 1994, पृ॰ 7, 'विष्णु की अवतार प्रतिमाएं' शीर्षक आलेख।
3. 'देवदूत आया, हम पहचान न सके', 1972, पृ॰ 5, युग निर्माण योजना, मथुरा।
4. 'महापुरुषों की जीवनगाथाएं', प्रस्तुतकर्ता : राष्ट्र बंधु।
5. हिन्दू मान्यता में सृष्टि की आयु के माप के लिए युग, मन्वन्तर और कल्प तीन मुख्य मान उल्लिखित हैं। चार युगों (सत, त्रेता, द्वापर और कलि) का एक महायुग (43,20,000) वर्ष, 71 महायुगों का एक मन्वन्तर और 14 मन्वन्तरों का एक कल्प होता है।
6. 'धर्मशास्त्र का इतिहास', पृ॰ 483, जिल्द 4, प्रकाशक : उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, संस्करण :1984।
7. 'विभिन्न धर्मों में ईश्वर की कल्पना', पृ॰ 51, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1988।
8. 'अवतारवाद और रिसालत', कान्ति प्रकाशन, नई दिल्ली-25, पृ॰ 148-149।
9. 'अवतारवाद और रिसालत', कान्ति प्रकाशन, नई दिल्ली-25, पृ॰ 152।
10. इच्छागृहीताभिमतो रुदेहस्ससाधिशेष जगद्वितीयः — विष्णु पुराण (6-5-84)।
11. श्रीमद् भगवद्गीता, सानुवाद शंकरानंदी व्याख्या सहित, पृ॰ 224
12. 'प्राचीन भगवद् गीता' पृ॰ 24, प्रकाशक : गोविन्द राम हासानन्द, 4408, नई सड़क, दिल्ली, संस्करण : 1975

13. 'प्राचीन भगवद् गीता' पृ. 24, प्रकाशक : गोविन्द राम हासानन्द, 4408, नई सड़क, दिल्ली, संस्करण : 1975
14. 'प्राचीन भगवद् गीता' पृ. 25, प्रकाशक : गोविन्द राम हासानन्द, 4408, नई सड़क, दिल्ली, संस्करण : 1975
15. 'देवदूत आया, हम पहचान न सके', 1972, पृ. 5
16. 'विश्व ज्योति', भारतीय पुनर्जागरण अंक, अप्रैल-मई, 1988, पृ. 47
17. पवित्र क़ुरआन में है : "न जना और न जना गया।" (112 : 3)
18. यजुर्वेद का सुबोध भाष्य, पृ. 647, 648, प्रकाशक : स्वाध्याय मण्डल, पारडी, जनपद—बलसाड, संस्करण : 1989
19. "दयानन्द ग्रन्थ-माला" , प्रथम खण्ड 'आर्य्याभिविनय' से उद्धृत, पृ. 596,597, प्रकाशक : श्रीमती परोपकारिणी सभा, अजमेर, संस्करण : 1983
20. "गीता तत्व-विवेचिनी टीका" , पृ. 175, प्रकाशक : गीता प्रेस, गोरखपुर, संस्करण : 1950
21. "यजुर्वेद का सुबोध भाष्य" , पृ. 497
22. "यजुर्वेद का सुबोध भाष्य" , पृ. 647
23. "यजुर्वेद का सुबोध भाष्य" , पृ. 647
24. "एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः" —यजुर्वेद (32 : 4)
25. बुद्धिस्ट इकानोग्राफी, विजयतोष भट्टाचार्य, पृ. 13
26. नराशंस और अंतिम ऋषि, इलाहाबाद।
27. दैनिक जागरण, नई दिल्ली, 1 दिसम्बर 1997
28. कान्ति मासिक (दिल्ली), जुलाई 1997, पृ. 33-34
29. इस्लाम का शाब्दिक अर्थ है : आज्ञा मानना, अर्थात् ईश्वर का आज्ञापालन करना है। आज्ञापालन करने वाले को मुस्लिम कहते हैं। 'इस्लाम' के धातु अक्षरों से बने 'सिल्म' शब्द का शाब्दिक अर्थ अम्न और शान्ति है। 'सलाम' शब्द अर्थ भी यही है।
30. इस्लाम का एकेश्वरवाद पृ. 1, इस्लामी साहित्य सदन, रामनगर, वाराणसी

□□

हज़रत मुहम्मद(सल्ल॰)–'अन्तिम' ईशदूत क्यों? एक बौद्धिक विश्लेषण

■ मुहम्मद ज़ैनुल आबिदीन मंसूरी

इन्सान को ज़िन्दगी जीने के लिए जिस ज्ञान और मालूमात की ज़रूरत होती है, उसमें से क़ाफ़ी हिस्सा उसकी पंचेन्द्रियों [Five Senses–देखना (आंख), सुनना (कान), सूंघना (नाक), चखना (जीभ), छूना (हाथ)] के माध्यम से उसे हासिल होता है। इसके साथ उसे बुद्धि-विवेक भी प्राप्त है जिसके द्वारा वह चीज़ों का और अपनी नीतियों, कामों और फ़ैसलों आदि का उचित या अनुचित, लाभप्रद या हानिकारक होना तय करता है। धर्म में विश्वास रखने वाले (और न रखने वाले भी) लोग जानते-मानते हैं कि ये पंचेन्द्रियां (और बुद्धि-विवेक) स्वयं मनुष्य ने अपनी कोशिश, मेहनत, सामर्थ्य, इच्छा और पसन्द से नहीं बनाई हैं, बल्कि धर्म को माननेवाले लोगों का विश्वास है कि इन्हें ईश्वर ने बनाकर मनुष्य को प्रदान किया है। ईश्वर ने मनुष्य का सृजन किया है और पंचेन्द्रियां व बुद्धि-विवेक मनुष्य के व्यक्तित्व के अंग व अंश हैं।

ईशदूत की आवश्यकता

तजुर्बा बताता है और पूरा इतिहास गवाह है कि ज्ञानोपार्जन के सिर्फ़ उपरोक्त साधनों (पंचेन्द्रियों और बुद्धि) पर ही पूरी तरह से निर्भर होकर किए जाने वाले काम और फ़ैसले कभी बहुत ग़लत और कभी बड़े हानिकारक व घातक भी हो जाते हैं। इससे साबित होता है कि इन्सान को उपरोक्त साधनों के अतिरिक्त भी किसी साधन की परम आवश्यकता है। ऐसा साधन, जो इन्सान को वह ज्ञान और मालूमात दे, जो उसकी पंचेन्द्रियों की पहुंच से बाहर है। यह साधन जिस माध्यम से प्राप्त होता है वह 'ईशदूत' है, जिसे ईश-सन्देष्टा, ईश-प्रेषित, रसूल, नबी, पैग़म्बर और Prophet आदि शब्दों से व्यक्त किया जाता है।

कुछ बुनियादी सवाल हैं जिनका इन्सान और समाज से बड़ा गहरा ताल्लुक़ (सम्बन्ध) है और जो पंचेन्द्रियों से अर्जित ज्ञान के दायरे से बाहर हैं, जैसे :

1. इन्सान क्यों—अर्थात् किस उद्देश्य से पैदा किया गया है? क्या सिर्फ़ 'खाओ-पियो, मौज करो', के उद्देश्य से? लेकिन यह तो पशु-पक्षियों आदि की हैसियत हो सकती है, मनुष्य जैसे उच्च व प्रतिभाशील प्राणी की नहीं।
2. मनुष्य तमाम प्राणियों में उच्च व प्रतिभामय है तो क्यों है और कैसे है?
3. मनुष्य का स्रष्टा कौन है, उसके गुण क्या-क्या हैं? मनुष्यों, स्रष्टा और बाक़ी सृष्टि के बीच संबंध की उचित व उत्तम रूपरेखा, सीमा और तक़ाज़ा क्या है?
4. इस नश्वर जीवन की वास्तविकता क्या है? मरने के बाद क्या है? शरीर सड़-गलकर नष्ट हो जाता है और बस? फिर मनुष्य के अच्छे या बुरे कामों का वह हिसाब, इन्साफ़ और बदला कहां गया, जो इस जीवन में उसे न्यायसंगत रूप में पूरा या अधूरा या कुछ भी नहीं मिल सका था। क्या ईश्वर महान, दयालु, कृपाशील की यह दुनिया किसी "चौपट राजा की अन्धेर नगरी" समान है?

इन और इनसे निकले अनेकानेक अन्य सवालों का सही जवाब पाना मनुष्य की परम आवश्यकता है, क्योंकि इनके सही या ग़लत या भ्रमित होने पर मनुष्य के चरित्र, आचार-विचार, व्यवहार का तथा पूरी सामाजिक व सामूहिक व्यवस्था का अच्छा या बुरा होना निर्भर है। 'ईशदूत' इसी आवश्यकता को पूरा करता है। मनुष्य तथा उसका समाज इससे निस्पृह और बेनियाज़ हरगिज़ नहीं हो सकता। ऐसी निस्पृहता बड़ी तबाही का कारक बनती है।

ईशदूत-शृंखला और उसकी अन्तिम कड़ी

ईशदूत के महत्व, आवश्यकता व अनिवार्यता के अनुकूल धरती पर इन्सान के वजूद के साथ ही ईशदूतत्व (नुबूवत/रिसालत) का सिलसिला आरंभ हो गया। इस्लामी ज्ञान-स्रोतों के अनुसार हज़ारों वर्ष पर फैले मानव इतिहास में लगभग सवा-डेढ़ लाख ईशदूत हुए। क़ुरआन के अनुसार (13:7) हर क़ौम में पथ-प्रदर्शक (हादी अर्थात् ईशदूत) भेजे गए। कभी एक के बाद दूसरे और कभी एक ही साथ कई ईशदूत, युग, क्षेत्र और जातियों व क़ौमों की

आवश्यकताओं, समस्याओं और परिस्थितियों के अनुकूल ईश्वरीय मार्गदर्शन के अन्तर्गत इन्सानों और समाजों का पथ-प्रदर्शन करते, उन्हें विशुद्ध एकेश्वरवाद का आह्वान करते तथा ईश्वरीय आदेशों-निर्देशों और नियमों के अनुसार जीवन बिताने की शिक्षा व प्रशिक्षण देते हुए स्वयं को साक्षात् आदर्श (Role Model) के रूप में पेश करते रहे। उन ईश-सन्देष्टाओं में से कुछ पर 'ईश-ग्रंथ' भी अवतरित हुए। हर ईशदूत ने स्वयं को स्पष्ट शैली में ईश्वर का दास (बन्दा, सेवक) और सन्देष्टा व रसूल घोषित किया और सारे ईशदूतों ने लोगों के सामने इस भ्रम की तनिक भी गुंजाइश न रख छोड़ी कि वे स्वयं ईश्वर थे, ईश्वर का अंश थे, ईश्वर का अवतार थे, ईश्वर का बेटा थे या उनमें कुछ दैवी गुण थे, दैवी (ख़ुदाई) शक्ति-सामर्थ्य थी।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) इस लंबे सिलसिले की अन्तिम कड़ी थे। यह एक मिथ्या धारणा प्रचलित है कि आप (सल्ल॰) इस्लाम धर्म के संस्थापक थे। सच यह है कि सारे ईशदूत मूल ईश्वरीय धर्म 'इस्लाम' के वाहक और प्रचारक थे और हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) सबके आख़िर में ईश्वर की ओर से 'सत्य धर्म इस्लाम' के वाहक व प्रचारक—नबी/रसूल/पैग़म्बर थे। आप (सल्ल॰) पर अन्तिम ईशग्रंथ 'क़ुरआन' आपके जीवनकाल की 23 वर्षीय अवधि में अवतरित हुआ, जिसमें वही सारा सत्य और मूल-सत्य समाहित था जो पहले के ईशग्रंथों में था। सभी अस्ल ईशग्रंथों की समान (Common) मूल धारणाएं (विशुद्ध एकेश्वरवाद, परलोकवाद और ईशदूतवाद) स्पष्ट व पारदर्शी (Transparent) रूप में ईशग्रंथों के इस अन्तिम संस्करण 'क़ुरआन' में अंकित व संग्रहित करके अन्तिम ईश-सन्देष्टा के सुपुर्द कर दी गईं कि अब कोई ईशदूत नहीं आने वाला, आप पूरी मानवजाति के लिए, तथा सदा-सदा के लिए अवतरित यह दिव्य ग्रंथ अल्लाह के बन्दों के सुपुर्द कर दें। आप (सल्ल॰) ने अन्तिम ईशदूत की यह भारी और नाज़ुक ज़िम्मेदारी पूरी तरह से निभाकर संसार से परलोक को प्रस्थान किया।

'अन्तिम' ईशदूत क्यों और कैसे?

मस्तिष्क में सहज ही यह प्रश्न उठता है कि जब मनुष्य को ईश्वरीय मार्गदर्शन की, अतः मार्गदर्शक ईशदूत की आवश्यकता सदा से चली आ रही है, तो ईशदूत-शृंखला का अन्त क्यों हो गया और हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰)

अन्तिम ईशदूत क्यों हुए? आप (सल्ल॰) के बाद भी यह सिलसिला जारी न रहने में क्या तर्क है? इस प्रश्न का उत्तर समझने में आसानी के लिए पहले इस बात पर विचार कर लेना उचित होगा कि भूतकाल में ईशदूतत्व का सिलसिला ईश्वर ने जारी ही क्यों रखा।

प्राचीनकाल में ईशदूतत्व का सिलसिला जारी रहने के कारण

गुज़रे ज़मानों में परिस्थितियां हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के ज़माने से भिन्न थीं। उनमें स्थायित्व बहुत कम, परिवर्तनशीलता बहुत ज़्यादा तथा काल व क्षेत्र के स्तर पर विविधता व विषमता काफ़ी होती थी। समाज व संस्कृति क्रमविकास (Evolution) के दौर से गुज़र रही थी। स्थितियां कुछ इस प्रकार की थीं :

1. आरंभ काल में सामाजिकता व सभ्यता (Civilization) न थी। नागरिकता का पूर्ण अभाव था। आबादी बहुत कम और एक या कुछ क्षेत्रों तक सीमित थी। इसी के अनुसार ही इन्सानों की आवश्यकताएं व समस्याएं भी थीं और उन्हीं के अनुकूल लोगों को ईश-मार्गदर्शन की आवश्यकता थी जिसके लिए इस्लाम के तीन शाश्वत मूलधारणाओं के साथ जीवन व्यवस्था और जीवन-विधान के बहुत कम नियमों और तदनुसार सीमित मार्गदर्शन की आवश्यकता थी। इसी की अनुकूलता में ईशदूत नियुक्त किए जाते रहे और कम कालान्तर में रसूल आते रहे।
2. समय बीतते-बीतते परिस्थितियां बदलती गईं। आबादी बढ़ती गई। जीवनशैली में बदलाव व विकास आता गया। धीरे-धीरे सामूहिकता उत्पन्न होने लगी। सभ्यता-संस्कृति बनने लगी। आवश्यकताओं और समस्याओं में भी परिवर्तन और बढ़ोत्तरी होने लगीं। इसी के अनुकूल ही ईश्वरीय मार्गदर्शन, नियमों और शिक्षाओं की आवश्यकता हुई और पहले से अधिक और विस्तृत शिक्षाओं के साथ ईश्वर एक के बाद एक, नए-नए ईशदूत नियुक्त करता रहा।
3. एक ईशदूत के देहावसान के बाद उसके द्वारा दी गई ईश्वरीय शिक्षाओं को लोग या तो भूलते गए या उन्हें दूषित व भ्रष्ट करते गए या जान-बूझकर उन्हें छोड़ते गए। पूरी परिस्थिति को फिर से शुद्धता से

परिपूर्ण करने के लिए एक के बाद एक ईशदूत नियुक्त किया जाता रहा। यह सिलसिला जारी रहा।

4. नागरिकता उत्पन्न हुई। साथ ही बढ़ती हुई आबादी जीवनयापन-सामग्री अर्जित करने के लिए एक जगह से दूसरी जगह स्थानांतरित होने लगी। कुछ ज़माने बाद विभिन्न और दूर-दूर के क्षेत्रों में आबादियां फैल गईं। समाज बनने लगे। सामाजिक आवश्यकताएं और समस्याएं बढ़ने भी लगीं, बदलने भी लगीं। तब सारे क्षेत्रों, समाजों और जातियों व क़ौमों में एक ही समय में कई-कई ईशदूत नियुक्त हुए। अलग-अलग परिस्थितियों के अनुकूल ईश्वरीय मार्गदर्शन अवतरित होने और ईशदूत नियुक्त किए जाने का सिलसिला जारी रहा।

5. ज्ञान में वृद्धि और सभ्यता-संस्कृति में विकास होते-होते वह प्रौढ़ता और परिपक्वता (Maturity) की ओर अग्रसर होती गई। समाज की ज़रूरतें, समस्याएं तथा जटिलताएं भी बढ़ीं। इसी परिस्थिति के अनुकूल ईश्वरीय नियमों, शिक्षाओं और आदेशों के साथ नए-नए ईशदूतों का क्रम जारी रहा।

6. बोलियों ने भाषा का रूप लिया और भाषाओं को लिपि का लिबास मिला। लेखनशैली उत्पन्न हुई। ईशदूत आए और उन पर अवतरित ईशवाणी लिखित रूप में ईशग्रंथ की सूरत में समाज को उपलब्ध होने लगी। लेकिन लिखित सामग्री (ईशवाणी) को मानवीय हस्तक्षेप से पूर्णतः सुरक्षित रखे जाने का प्रावधान सरल न था, अतः ग्रंथ में लोग कमी-बेशी भी करते रहे, मानवीय विचारों और कथनों की मिलावट भी होती रही। इस कारण बार-बार ईशदूत नियुक्त किए जाते रहे जो ईशादेशों को विशुद्ध रूप में समाजों के समक्ष प्रस्तुत करते और तदनुसार लोगों के चरित्र-निर्माण और समाज-संरचना का काम करते रहे। हर ईशदूत अपनी-अपनी क़ौम में यह काम करता रहा और सदियों-सदियों तक यह सिलसिला जारी रहा।

ईशदूत-शृंखला के समापन की परिस्थिति

मानव-समाज और सभ्यता की निरन्तर प्रगतिशीलता, विकास, उन्नति व अग्रसरता का सिलसिला आगे बढ़ते-बढ़ते एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हुई, जो पहले के ज़मानों से बड़ी हद तक भिन्न भी थी और उत्कृष्ट भी। सभ्यता अपनी परिपक्वता के चरण से काफ़ी क़रीब होने की स्थिति में आ गई।

1. इन्सानी आबादी, पृथ्वी के बड़े हिस्से में फैल गई। ज्ञान (Knowledge) ने विज्ञान (Sciences) का रूप भी धारा। यातायात, आवाहन, प्रवहन और संचार के साधन बने और बढ़े। क़ौमों और जातियों में दूरियां घटीं, मेलजोल बढ़ा। विचारों, मान्यताओं, धारणाओं का लेन-देन संभव हुआ। विभिन्न क़ौमों की आवश्यकताओं, समस्याओं और परस्पर निर्भरता में तालमेल व समानता तथा आदान-प्रदान की स्थिति बनी। बौद्धिक स्तर ऊंचा हुआ।
2. कागज़ और रोशनाई का आविष्कार और क़लम का उपयोग हुआ। लेखन प्रणाली विकसित हुई। पत्र, संधियां, पुस्तकें और ग्रंथ लिखे जाने लगे। महत्वपूर्ण लिखित सामग्री को सुरक्षित रखना और उसकी प्रतियां बनाना संभव हुआ। साहित्य अस्तित्व में आया और विकसित भी होने लगा।
3. ऐसा युग आया जो इस बात की संभावना दर्शाता था कि उसके जाते-जाते एक ऐसा युग आएगा, जब सभ्यता में विकास बहुत तीव्र और व्यापक होगा। कोई भू-भाग और उसमें रहने-बसने वाला समाज एक-दूसरे से बिल्कुल कटा हुआ, अपरिचित, अलग-थलग पड़ा न रह जाएगा। मनुष्य का ज्ञान स्तर, बौद्धिक स्तर काफ़ी ऊंचा उठ जाएगा और शायद कुछ सदियों बाद इन्सान एक वैश्वीय वृहद समाज का अंग बनने में कोई बड़ी कठिनाई न पाएगा।
4. मानव-सभ्यता निकट भविष्य में ऐसे साइंसी व तकनीकी युग में प्रवेश करने के लिए अग्रसर थी जिसमें लेखन, मुद्रण, प्रकाशन, प्रसारण आदि की पद्धतियों तथा प्रचार-प्रसार के साधनों और विचारों व विचारधाराओं के आदान-प्रदान, अध्ययन, चिन्तन-मनन आदि के अवसरों में बहुत बड़ी क्रान्ति और व्यापकता आनेवाली थी, जिसमें ईशदूत की शिक्षाओं तथा उसके आदर्श और उस पर अवतरित ईशग्रंथ की शुद्धता व विश्वसनीयता

(Purity, Credibility and Authenticity) को सुरक्षित रखना तथा उनका विश्वव्यापी प्रचार-प्रसार करना संभव ही नहीं, बहुत ही आसान और प्रभावी भी होनेवाला था।

परिस्थिति की मांग

ऐसी परिस्थिति इस बात की मांग कर रही थी कि अब जो ईशदूत आए उस पर ईशदूतत्व का सिलसिला ख़त्म हो जाए। वह ऐसा ईशदूत हो जिसकी हैसियत, जिसका पैग़ाम, जिसका आह्वान, जिसकी शिक्षाएं, जिसका आदर्श, और जिस पर अवतरित ईशग्रंथ सार्वभौमिक भी हो और सार्वकालिक भी। उसकी शिक्षाओं और ईशवाणी को शुद्धता व सम्पूर्णता के साथ संकलित व सुरक्षित रखने के साधन उपलब्ध हो चुके हैं। पहले अलग-अलग क़ौमों और दूर-दूर, अलग-थलग पड़ी जातियों के लिए अलग-अलग ईशदूतों की आवश्यकता थी तो अब वह आवश्यकता बाक़ी न रही। पहले हर ईशदूत अपनी-अपनी क़ौम को संबोधित करता था। अब एक ईशदूत पूरी मानवजाति को संबोधित कर सकता है। एक ही ईशदूत में अब सारी इन्सानियत के हित और शुभेच्छा के गुण समाहित हों, तो उससे पूरी इन्सानियत लाभान्वित होने की स्थिति में आ गई है। अब ऐसा बिल्कुल संभव है कि उसका आह्वान भी वैश्विक हो और उसका आदर्श भी। उस पर जो ईशग्रंथ अवतरित हो वह पूरी मानवजाति का मार्गदर्शक हो, वह अन्तिम ईशग्रंथ हो और उसमें मानवजाति के स्थाई व संपूर्ण तथा शाश्वत मार्गदर्शन की बहुआयामी, बहुपक्षीय सामग्री इस तरह समाहित हो कि वह हर काल व भू-क्षेत्र के लिए प्रासंगिक (Relevant) हो। मानवजाति के व्यक्तिगत, दाम्पत्य, पारिवारिक, कौटुम्बिक व सामाजिक हर क्षेत्र से संबंधित ऐसे मौलिक नियम हों; उसकी आर्थिक, शैक्षणिक, न्यायिक और राजनीतिक तथा साथ ही नैतिक, आध्यात्मिक व चारित्रिक व्यवस्था के लिए ऐसे बुनियादी उसूल व क़ानून हों जो कभी पुराने न हों, लाभहीन, अनुपयोग्य, अव्यावहारिक न हों।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) अन्तिम ईशदूत

परिस्थिति की उपरोक्त मांग के विशाल ख़ाके में सुन्दर रंग भरने के लिए ईश्वर ने हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) को ईशदूत चुना। (आप सल्ल. की एक

उपाधि 'मुस्तफ़ा' है, यानी 'चुना हुआ')। आप अन्तिम नबी ('ख़ातमन्-नबीयीन' अर्थात् नबियों...ईश सन्देष्टाओं...का सिलसिला ख़त्म करनेवाला) घोषित किए गए (क़ुरआन, 33:40)।

1. हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) यद्यपि अरब प्रायद्वीप (Arabian Penisula) में पैदा हुए, आपकी मातृभाषा अरबी थी, आपका प्रथम व प्रत्यक्ष संबोधन अरबों से था, आप पर अवतरित ईशग्रंथ 'क़ुरआन' की भाषा अरबी है। लेकिन आपकी (और क़ुरआन की) हैसियत अरब-क़ौमियत (Arab Nationalism) और अरबी भाषा तक सीमित नहीं है।
2. आप (सल्ल॰) के जीवनकाल में ही आपका आह्वान इथियोपिया, मिस्र, रोम, फ़ारस (ईरान), यमन, भारतीय उपमहाद्वीप आदि तक पहुंच चुका था। बाद की 12-13 सदियों के अन्दर पूरे विश्व में उसकी गूंज पहुंच गई और आपकी हैसियत 'अरबी रसूल' के बजाय सार्वभौमिक वैश्विक ईशदूत की बन गई। दुनिया के चप्पे-चप्पे पर मौजूद, अनेकानेक नस्लों और राष्ट्रीयताओं के लोग लगभग 150 करोड़ की तादाद में आप (सल्ल॰) के आह्वान के अनुपालक हैं। आप (सल्ल॰) ने जो धर्म पेश किया उस पर आधारित समूची समाज-व्यवस्था, राज्य व्यवस्था तथा शासन व्यवस्था सन 625 से 632 ई॰ के बीच आप ही के तत्वावधान में और आपके ही के अधीन स्थापित व सुचालित हुई, तो 1400 वर्ष तक इसका सिलसिला विश्व में कहीं न कहीं या अनेक भू-भागों पर क़ायम रहा और आज भी जारी है और जहां इस व्यवस्था को सक्रिय रहने का जितना अवसर मिला वहां उसी अनुपात में समाजी अमन, शान्ति व सलामती, बंधुत्व, न्याय, मानवाधिकार एवं बराबरी का बोलबाला रहा है। इससे सिद्ध होता है कि ज़माना चाहे जितना भी आगे बढ़ जाए, आपके ईशदूतत्व को निरस्त करके किसी नए ईशदूत के आने की ज़रूरत बिल्कुल नहीं है।
3. आप (सल्ल॰) को क़ुरआन में ईश्वर ने (मात्र अरबवासियों या मुसलमानों के लिए नहीं, बल्कि) "सारे संसारों के लिए साक्षात् दया व कृपा' की उपाधि दी (क़ुरआन, 21:107)।
4. आप (सल्ल.) ने रंग, भाषा, वर्ण, वंश, जाति व राष्ट्रीयता आदि के आधार पर 'श्रेष्ठ' और 'नीच' की "जाहिलीयत" का समापन कर 'मानवजाति

के ऐक्य" (Oneness of Humankind) को स्थापित किया और टूटी हुई मानवजाति रूपी माला के बिखरे दानों को एकेश्वरवाद की लड़ी में पिरोया।

5. कोई ऐसी छोटी-बड़ी, जटिल नैतिक, सामाजिक व आध्यात्मिक समस्या ऐसी नहीं जो आप (सल्ल॰) के समय में मौजूद रही हो (या आज 1400 वर्ष बाद भी विश्व में कहीं भी पाई जाती हो) और आपने उसका सफल समाधान न कर दिया हो। चरित्रहीनता, झूठ, बेईमानी, शोषण, चोरी, डकैती, रहज़नी, रिश्वत, गबन, अश्लीलता, अभद्रता, शोषण, नारी अपमान व शोषण, बालिका-वध (अब कन्या-भ्रूण-हत्या) आदि—उस तात्कालिक समाज में भी सबका उन्मूलन व दमन किया और आज भी आप (सल्ल॰) का आदर्श इस दिशा में सक्रिय व सक्षम सिद्ध हो रहा है। निष्पक्ष विद्वानों का मानना है कि वर्तमान युग की अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार उद्घोषणा तथा युद्ध-आचारसंहिता और युद्धबन्दियों से संबंधित अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून आप (सल्ल॰) के ही आदर्श से लिए गए हैं।

ये मात्र थोड़े से तर्क, सिर्फ़ चन्द दलीलें हैं, जो आप (सल्ल॰) के अन्तिम (सार्वभौमिक व सार्वकालिक) ईशदूत होने की चलती-फिरती, साक्षात् दलीलें हैं। इनके अतिरिक्त आप पर अवतरित ईशग्रंथ 'क़ुरआन' के अन्तिम ईशग्रंथ होने के अनेक तर्क व प्रमाण ख़ुद क़ुरआन में और क़ुरआन के बाहर भी बड़ी मात्रा में पाए जाते हैं।

क़ुरआन के पहले अध्याय (सूरह) की पहली आयत में अल्लाह को किसी जाति-विशेष का नहीं, सारे संसारों का पालनकर्ता (रब़) कहा गया है। अन्तिम सूरह की पहली तीन आयतों में उसे सारे लोगों का रब, सारे लोगों का स्वामी (मालिक) और सारे लोगों का इष्ट पूज्य-उपास्य (इलाह) कहा गया है। अनेक आयतों में लोगों को 'ऐ इन्सान', 'ऐ आदम की संतान' और 'हे लोगो' कहकर संबोधित किया गया है। इस संबोधनशैली में काल, समय और स्थान (देश, राष्ट्र) की सीमाएं तोड़ दी गई हैं। क़ुरआन के नियमों, आदेशों और क़ानूनों पर आधारित ईश्वरीय व्यवस्था ने आज लगभग डेढ़ हज़ार वर्ष बीत जाने पर भी ऐसी उत्कृष्ट व श्रेष्ठ नैतिक, सामाजिक, प्रशासनिक एवं राजकीय व्यवस्था के नमूने पेश कर रखे हैं, जो इस तथ्य के तर्क व प्रमाण हैं कि अब इस ईशग्रंथ के अतिरिक्त किसी अन्य ईशग्रंथ की आवश्यकता कदापि नहीं है और यही

स्थिति भविष्य के लिए भी है। इस प्रकार बिना किसी पूर्वाग्रंह और नकारात्मक पक्षपात के देखा जाए तो क़ुरआन का अन्तिम ईशग्रंथ होना और इसके वाहक हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) का अन्तिम ईशदूत होना बौद्धिक विश्लेषण और अक़्ली जायज़े से पुष्ट (Confirm) हो जाता है।

6. पिछले ईशदूतों के इतिहास पर समय और काल की धूल कुछ इतनी जमी हुई है और अज्ञानता, भ्रम एवं विरोधाभास की धुंध कुछ ऐसी छाई हुई है कि उनकी सम्पूर्ण जीवनी, उनकी शिक्षाएं, उनके कथनों व कर्मों का ब्योरा, उनका जीवन-आचरण, उनका चरित्र एवं आचार-व्यवहार, उनका मिशन और उनका आदर्शस्वरूप, शुद्धता, प्रामाणिकता व विश्वसनीयता के साथ उनके बाद के मानव-समाज को उपलब्ध न हो सका। या तो उन्हें सुरक्षित न रखा जा सका, या उनके बाद मानवीय हस्तक्षेपों ने उन्हें प्रदूषित, विकृत व परिवर्तित कर दिया; यहां तक कि उनके साथ ऐसी-ऐसी कहानियां, घटनाएं और मिथ्या-धारणाएं (Mythologies) जोड़ दी गईं जो किसी ईशदूत के लिए सर्वथा अनुचित थीं। उनका ऐसा चरित्र प्रस्तुत किया गया जो आगामी मानवजाति के लिए 'आदर्श' बन ही न सकता था।

उपरोक्त वस्तुस्थिति हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के संदर्भ में बिल्कुल भिन्न और उत्कृष्ट (Distinctly different) हो गई। आपका जन्म, आपकी पूरी जीवनी, आपका सम्पूर्ण जीवन-आचरण, आपका आह्वान, आपकी शिक्षाएं, आपका मिशन, ईश्वरीय मिशन में आपका संघर्ष, आपका चरित्र और आचार-व्यवहार, आपका व्यक्तिगत, दाम्पत्य, पारिवारिक व सामाजिक जीवन...यहां तक कि आपका बोलना, चुप रहना, मुस्कराना, हंसना, दुखी होना, क्षमा कर देना और बदला का औचित्य होने पर भी बदला न लेना, शान्ति व युद्ध की अवस्था में आपकी नीति व कार्यविधि, आपका सोना, चलना-फिरना, आपका लिबास व परिधान, आपका वुज़ू व स्नान करना, लोगों से दिन-प्रतिदिन के मामले निबटाना, लोगों के अधिकार देना और दिलाना; समाजसेवी, समाज-रचयिता, धर्म-गुरु, उपासक, उपदेशक, न्यायाधीश, शिक्षक-प्रशिक्षक, शासक-प्रशासक, योद्धा व कमांडर आदि की भूमिकाएं निभाना, ईश्वर की उपासना स्वयं करना और अपने अनुयायियों को ईशमान्य उपासना-पद्धति सिखाना तथा एक ईशपरायण समाज और सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था बनाना...अर्थात् आप (सल्ल॰) के सम्पूर्ण (Holistic) आदर्श (23 वर्षीय पैग़म्बरीय जीवन) का

प्रारूपण व सृजन इतिहास की पूरी रोशनी में हुआ। इस आदर्श का एक-एक अंग, एक-एक पहलू और एक-एक सूक्षतम अंश आप (सल्ल०) के जीवन-काल से ही बड़ी शुद्धता, सूक्ष्मता, प्रामाणिकता व विश्वसनीयता के साथ रिकार्ड किया जाता रहा। इसके लिए पूरा एक विज्ञान विकसित हुआ और एक वृहद, विशाल व विस्तृत 'हदीसशास्त्र' अस्तित्व में आया (हदीस=आप (सल्ल०) की कथनी-करनी का लिखित व प्रमाणिक ब्योरा)। पहले पुस्तकों ने, फिर प्रिंट-मीडिया और फिर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और फिर इन्टरनेट और वर्ल्ड वाइड वेब (www) ने आप (सल्ल०) के ईशदूतत्व को वैश्वीकृत (Globalised) और सार्वभौमिक व सार्वकालिक बना दिया।

□□

ईशदूत : आवश्यकता व महत्व

❖ डॉ॰ सैयद शाहिद अली

इन्सान की मजबूरी

दुनिया की सारी नॉलेज (ज्ञान) सिर्फ़ यह बता सकती है कि इंसान क्या है मगर इंसान क्यों है? यह कोई नहीं बता सकता। इंसान के कुछ बुनियादी सवाल (Ultimate Questions) हैं, जिनका जवाब जानना उसके लिए बहुत ज़रूरी हैं। जैसे क्या इंसान का कोई स्रष्टा है? अगर है, तो वह इंसान से क्या चाहता है? इंसान कहाँ से आया और क्यों आया? मरने के बाद क्या होगा? ज़िंदगी की परिभाषा क्या है? इंसान आज़ाद है या मजबूर, इत्यादि। इन सवालों के जवाब इंसान खुद क्यों नहीं तलाश कर सकता?

इंसान को सही ज़िंदगी गुज़ारने और नुक़सान से बचने के लिए इन सवालों के भी जवाब जानना ज़रूरी है : इंसान का खुद से रिश्ता कैसा हो? इंसान और इंसान के बीच रिश्ता कैसा हो? मर्द और औरत के बीच रिश्ता कैसा हो? इंसान और ब्रह्माण्ड के बीच रिश्ता कैसा हो? इंसान का मुसीबत व खुशहाली, दुख व सुख से रिश्ता कैसा हो? इंसान का खाने से कैसा रिश्ता हो? इंसान का दौलत व ग़रीबी के साथ रिश्ता कैसा हो? इंसान के लिए क्या सही है व क्या ग़लत और क्या लाभदायक है व क्या हानिकारक?

ऊपर के सभी सवालों का जवाब एक इंसान या सभी इंसान मिलकर खुद से नहीं तलाश कर सकते, क्योंकि इंसान के औज़ार (Tools) सीमित हैं। इंसान के पास यह पाँच टूल्स (औज़ार) होते हैं :

1. बुद्धि (Intellect)
2. इन्द्रियाँ (Senses)
3. कल्पना शक्ति (Imagination)
4. ज्ञान (Knowledge)
5. अनुभव (Experience)

इंसान के यह पांचों औज़ार अधूरे (Limited) हैं। किसी भी एक इंसान या सभी इंसानों को Total Past, Total Present और Total Future (भूत, भविष्य, वर्तमान) की न तो ज्ञान होता है और न अनुभव।

अपनी इंद्रियों के द्वारा, जिस चीज़ को इंसान महसूस करता है, वह उस पर यक़ीन कर लेता है। इंसान, देखकर जानता है कि फूल खुबसूरत है। सुनकर, जानता है कि आवाज़ सुरीली है। चखकर, जानता है कि फल मीठा है। सूंघकर, जानता है कि खाना अच्छा है। छूकर, जानता है कि बर्तन गर्म है।

इंसान की इंद्रियों की शक्ति सीमित (Limited) होती है। इंसान की सभी इंद्रियां, एक ख़ास काम ही कर पाती हैं। देखने की इन्द्री से, सिर्फ़ रंगों की दुनिया में देखा जा सकता हैं। सुनने की इन्द्री से, सिर्फ़ आवाज़ों की दुनिया को महसूस किया जा सकता हैं। चख़ने, सूंघेने और छूने की इंद्रियों से, एक विशेष क्षेत्र में ही काम लिया जा सकता है।

इंसान अपनी इंद्रियों से, दुनिया की सभी चीज़ों को महसूस नहीं कर सकता। इंसान पूरा समुंद्र न देखकर, उसका उतना ही हिस्सा देख पाता है, जो आंखों के सामने होता है। इंसान एक चींटी की आवाज़ नहीं सुन पाता। इंसानी कान, आवाज़ की पांच हज़ार से बीस हज़ार के बीच की तरंग, ध्वनि ही सुन सकते हैं। इंसान के कान, पांच हज़ार से कम आवाज़ की लहरों को नहीं सुन सकते और बीस हज़ार से ज़्यादा की आवाज़ की लहरें, कान के परदे फाड़ देती है। इंसान चीनी की ख़ुशबू नहीं सूंघ सकता, जबकि चींटी और मक्खी, उसे दूर ही से सूंघ सकती हैं।

कमरे में मौजूद टीवी के सिग्नल्स को हम महसूस नहीं कर सकते, जब तक कि टीवी न खोलें। Supersonic लहरों को हम नहीं सुन सकते, मगर राडार सुन सकते हैं। हाथी आवाज़ की लहरों के द्वारा आपस में बात करते हैं, मगर हम उन्हें नहीं सुन सकते। इंसान की इंद्रियां मौजूदा चीज़ों में से सभी चीज़ों को महसूस नहीं कर सकतीं। बहुत सारी चीज़ें ऐसी हैं, जो इंसान की इंद्रियों की पहुंच से बाहर हैं।

इंसान के पास "कल्पना शक्ति" (Power of Imagination) होती है। जिसकी मदद से वह बहुत-सी चीज़ों को जान लेता है, और उन पर विश्वास करता है। घर से दूर रहकर घर की कल्पना करना और उसे देख लेना। मगर

इंसान की कल्पना शक्ति भी सीमित है। इंसान किसी ऐसी चीज़ की कल्पना कर ही नहीं सकता, जिसको उसने पहले अपनी इंद्रियों के द्वारा न महसूस किया हो।

दुनिया में जो भी नई चीज़ बनाई जाती है, वह हक़ीक़त में नई नहीं होती, बल्कि मौजूदा चीज़ों का संकलन होती है। जैसे जहाज़, कंप्यूटर और सैल फ़ोन। पानी में बिजली, ज़मीन में लोहा, हवा में लहरें, पहले से मौजूद थीं, मगर आज इन चीज़ों को मिलाकर नया रूप दे दिया गया। दुनिया में जितने आर्ट के नमूने (Masterpiece) हैं, वे भी मौजूदा चीज़ों का नया संकलन हैं। जैसे परों, इंसानी चेहरे वाले बैल का मुजस्मा (मूर्ति)। इंसान का चेहरा, पंख, बैल यह सब मौजूद था, सिर्फ़ इन्हें मिला दिया गया। इसी तरह गुरुत्वाकर्षण (Gravity of earth) का नज़रिया, ज़मीन में कशिश (आकर्षण) पहले से थी, मगर खोज बाद में हुई। इसी तरह सभी दवाइयों का बनना।

इंसान के पास सबसे अच्छी चीज़ 'अक़्ल' (Intelligence) है। मगर, इंसान की बुद्धि पूरी नहीं होती। अक़्ल समय और जगह के बाहर काम नहीं कर सकती।

इसी तरह इंसानी अक़्ल, न तो भूतकाल की सभी बातों को, न वर्तमान की और न भविष्य की सारी बातों को समझ सकती है। यहां तक कि इंसान की अक़्ल इतनी सीमित और मजबूर है कि खुद इंसान की हक़ीक़त 'रूह' (Spirit) को भी नहीं समझती।

संदेष्टा और संदेश

इंसान का जब बचपन गुज़रता है और वह बड़ा होने लगता है और उसमें समझ आ जाती है, तब उसकी अक़्ल ज़िन्दगी के बुनियादी सवालों पर ग़ौर करती है। इंसान, ब्रह्माण्ड और खुद को देखता है, उसपर चिंतन-मनन करता है। तब उसके सामने दो विकल्प (Option) होते हैं : या तो यह माने की इंसान का कोई स्रष्टा (Creator) है, या यह माने कि इंसान का कोई स्रष्टा नहीं है।

यहाँ मानव बुद्धि तुलना करती है और सोचती है कि जब मामूली से मामूली चीज़ों जैसे पेन, कॉपी, मेज़, कुर्सी का बनानेवाला होता है, तो इंसान जैसी ज़बर्दस्त रचना (Creature) का भी बनानेवाला होना चाहिए। लाखों सालों से इंसान के बच्चे इंसान ही पैदा हो रहे हैं, बंदर, कुत्ते या बिल्ली नहीं।

यह भी प्रमाणित करता है कि इंसान की पैदाइश संयोग नहीं, बल्कि योजनाबद्ध है। बुद्धि इस पहले नतीजे (Finding) पर पहुँचती है कि इंसान का स्रष्टा है।

इंसानी अक़्ल और ज़्यादा ग़ौर करती है। जब उसके सामने दो विकल्प होते हैं : या तो यह माने कि इंसान का बनानेवाला स्रष्टा एक है, या यह माने कि इंसान को बनानेवाले, एक से ज़्यादा हैं। यहाँ इंसान की बुद्धि तुलना करती है, अगर एक देश के दो प्रधानमंत्री, एक क्लास के तीन टीचर और एक कार के चार ड्राइवर हों, तो व्यवस्था बिगड़ जाती है। इसके मुक़ाबले एक देश का एक प्रधानमंत्री, एक क्लास का एक टीचर और एक कार का एक ड्राइवर हो तो संकट पैदा नहीं होता। इसी तरह, अगर इंसान के एक से अधिक स्रष्टा हों तो इंसान (और ब्रह्माण्ड) की व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाएगी, नष्ट हो जाएगा। अक़्ल इस दूसरे निष्कर्ष पर पहुँचती है कि इंसान का स्रष्टा एक है।

इंसान की बुद्धि और अधिक सोच-विचार करती है। तब उसके सामने दो विकल्प होते हैं : एक, इंसान अपने स्रष्टा से सम्पर्क करे और मालूम करे कि उसे क्यों पैदा किया गया है? दो, इंसान का स्रष्टा खुद इंसान से सम्पर्क करे और उसे बताए कि उसे क्यों पैदा किया गया? यहाँ बुद्धि इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि पहली बात असंभव है, क्योंकि इंसान के पास अपने स्रष्टा से सम्पर्क करने का कोई भी साधन नहीं है।

दूसरी बात संभव है, इंसान और उसके स्रष्टा, दोनों में से ज़्यादा ताक़तवर इंसान का स्रष्टा है। न्याय भी यही कहता है कि उसे खुद ही इंसान से सम्पर्क करना चाहिए और बताना चाहिए कि उसने इंसान को क्यों पैदा किया? इस तरह बुद्धि इस तीसरे निष्कर्ष पर पहुँचती है कि इंसान का स्रष्टा खुद इंसान से सम्पर्क करे।

इंसान की बुद्धि अधिक चिंतन-मनन करती है। तब फिर, उसके सामने दो विकल्प होते हैं। एक, स्रष्टा प्रत्येक इंसान से खुद सम्पर्क करे और बताए कि वह इंसान का स्रष्टा है और उसने इंसान को क्यों पैदा किया है? दूसरे, स्रष्टा कुछ इंसानों से सम्पर्क करे और बताए; अपने बारे में और इंसान की ज़िंदगी के उद्देश्य के बारे में। फिर वह उन इंसानों की ड्यूटी लगाए कि वे सभी इंसानों तक उसका यह संदेश (Message) पहुँचाए। यहाँ, इंसानी अक़्ल इस

नतीजे पर पहुँचती है कि अगर ख़ुदा ने इंसान के लिए दुनिया की ज़िन्दगी को "इम्तिहान" (Examination) के लिए बनाया है, तो उसे पहला विकल्प नहीं अपनाना चाहिए। क्योंकि इस तरह हर इंसान को स्रष्टा के मौजूद होने का यक़ीन हो जाता, राज़ खुल जाता और इंसान की ख़ुदा को मानने या न मानने की आज़ादी भी ख़त्म हो जाती (जैसे इम्तिहान के किसी पेपर का आउट हो जाना)। इसके विपरीत अगर, स्रष्टा दूसरा विकल्प अपनाता, तब दुनिया इंसानों के लिए इम्तिहान भी बन जाती, ईश्वर इंसानों से सम्पर्क भी कर लेता। लोगों को ईश्वर का संदेश भी मिल जाता। इंसानों को अपनी ज़िंदगी का उद्देश्य भी मालूम हो जाता। ईश्वर है, इस बात पर यक़ीन करने या न करने की इंसान को आज़ादी भी मिल जाती और बिना देखे ईश्वर का आज्ञापालन करने या न करने का मानव अधिकार भी बाक़ी रहता।

इस तरह, बुद्धि इस चौथे निष्कर्ष पर पहुँची है कि स्रष्टा ने कुछ इंसानों से सम्पर्क किया, उनपर अपना संदेश भेजा जिसमें इंसान के मौलिक सवालों का जवाब दिया गया और उनको ज़िम्मेदारी दी कि वे सभी इंसानों तक यह संदेश पहुँचाए। इस तरह, इंसानों के लिए दुनिया इम्तिहान भी बनी और उन्हें ईश्वर को मानने और इंकार करने की आज़ादी भी मिली।

इसके बाद इंसान की बुद्धि इस पाँचवे निष्कर्ष पर पहुँचती है कि इंसानों में से उन इंसानों को तलाश करे (Search for Messengers) जिनसे स्रष्टा ने सम्पर्क किया। यहाँ पहुँचकर इंसानी अक़्ल अपनी अनुसंधान (Investigation) की शुरुआत उन लोगों से करती है, जिन्होंने इस बात का दावा किया है कि उनपर स्रष्टा का संदेश (Message) उतरा है और वे संदेष्टा (Messenger) हैं। बुद्धि उन दावा करनेवालों और उनके उस संदेश जिसको वे ईश्वर का बता रहे हैं, को आलोचना की सख़्त कसौटी पर परखती है।

इस संबंध में बुद्धि पहली बात यह देखती है कि उन संदेष्टताओं और ईशदूतों का इतिहास और उनका संदेश, उन्हीं की भाषा में विश्वसनीय तरीक़े से आज मौजूद है, या अधूरा है, या बदल दिया गया है। अर्थात् इंसानी अक़्ल पैग़म्बरों और पैग़ाम (Message) की ऐतिहासिक विश्वसनीयता (Historical Authenticity) चेक करती है। इसके बाद अक़्ल का दूसरा काम यह होता है कि वह उस पैग़ाम (जिसे स्रष्टा का कहा जा रहा है) को इंसान की बनावट (Human Nature) से मिलाकर चेक करती है कि वह पैग़ाम (संदेश) इंसान की

बनावट से मेल खाता है या नहीं? क्योंकि इंसान का बनानेवाला और पैग़ाम (Religion) का देनेवाला ख़ुद स्रष्टा है, इसलिए असंभव है कि दोनों में टकराव हो।

पैग़म्बर (ईशदूत) और पैग़ाम की पहचान के बाद इंसान की अक़्ल इस छठे निष्कर्ष पर पहुँचती है कि उसे अब स्रष्टा के पैग़ाम को मानना और उसका सम्पूर्ण आज्ञापालन करना चाहिए, न कि उसपर आपत्ति।

पैग़म्बर (नबी/रसूल/संदेष्टता) ईश्वर का चुना हुआ वह व्यक्ति होता है, जिस पर ईश्वर ने अपना संदेश भेजा और उसे दूसरे व्यक्तियों तक पहुंचाने का दायित्व सौंपा। पैग़म्बर स्वयं मनुष्य होते हैं और मनुष्यों के लिए नमूना बनाकर भेजे जाते हैं। कोई व्यक्ति अपने परिश्रम व कुशलता से पैग़म्बर नहीं बन सकता, बल्कि अल्लाह जिसे चाहता है पैग़म्बर, ईशदूत मनोनीत करता है।

ईश्वर ने मानव इतिहास के आरंभ से ही दुनिया के सभी भागों में अपने ईशदूतों को भेजा। पहले मनुष्य व ईशदूत हज़रत आदम (अलैहि.) थे और अन्तिम ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) हैं।

इस्लाम में ईशदूतों पर ईमान लाने का अर्थ यह है कि सभी ईशदूतों को माना जाए, चाहे उनके नाम हमें मालूम हों या न हों। क्योंकि सभी ईशदूत ईश्वर की तरफ़ से भेजे गए थे और उसी एक ईश्वर का कहना मानने की शिक्षा देते थे।

क़ुरआन से कुछ ईशदूतों के नाम का पता चलता है जैसे हज़रत नूह (अलैहि॰), हज़रत मूसा (अलैहि॰), हज़रत ईसा (अलैहि॰), हज़रत दाऊद (अलैहि॰), हज़रत सुलेमान (अलैहि॰) इत्यादि।

पहले इंसान व ईशदूत हज़रत आदम (अलैहि॰) से लेकर अन्तिम ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) तक अनेक ईशदूत आए, जो कि हर क़ौम (समुदाय) में भेजे गए। सभी ईशदूतों ने लोगों को उन्हीं की भाषा में ईश्वर का सन्देश दिया।

प्रश्न यह है कि बार-बार अनेक ईशदूत क्यों भेजे गए? वास्तव में प्राचीन-काल में परिवहन एवं संचार के साधनों की कमी के कारण, एक जगह की ख़बर दूसरी जगह पहुँचना मुश्किल थी। दूसरे यह कि लोग ईश्वर के सन्देश को बदल देते थे, तब ज़रूरत होती थी कि दोबारा ईश्वर का सन्देश आए।

सभी ईशदूतों ने एक ही सन्देश दिया कि ईश्वर एक है, दुनिया परीक्षा स्थल है और मरने के बाद ज़िन्दगी है। पहले के सभी ईशदूतों का मिशन लोकल था, मगर अन्तिम ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) का मिशन यूनीवर्सल है। अन्तिम ईशदूत पर ईश्वर का जो अन्तिम सन्देश (क़ुरआन) उतरा उसकी सुरक्षा और संरक्षा की ज़िम्मेदारी स्वयं ईश्वर ने ली है। चौदह सौ से अधिक वर्ष हो चुके हैं, मगर आज तक उसे बदला नहीं जा सका। ईश्वर का सन्देश अपनी अस्ल शक्ल (मूलरूप) में मौजूद है, इसलिए कि अब ज़रूरत नहीं है कि कोई नया ईशदूत आए।

क़ुरआन का केन्द्रीय विषय इंसान है। क़ुरआन इंसान के बारे में ईश्वर की स्कीम को बताता है। क़ुरआन बताता है कि इंसान को सदैव के लिए पैदा किया गया है और उसे शाश्वत जीवन दिया गया है। ईश्वर ने इंसान के जीवन को दो भागों में बाँटा है : मौत से पहले का समय (Pre-death period), जो अस्थाई है, इंसान के इम्तिहान (परीक्षा) के लिए है। मौत के बाद का समय (Post-death period), जो स्वर्ग या नरक के रूप में दुनिया में किए गए अच्छे या बुरे कर्मों का बदला मिलने के लिए है। यह कभी न ख़त्म होनेवाला स्थाई दौर है। इन दोनों के बीच में मौत एक तबादले के रूप में है।

प्रकाशना (वह्य)

ईशदूत पर ईश्वर का संदेश नाज़िल (उतरना) होता है जिसे 'वह्य' कहते हैं। वह्य का शाब्दिक अर्थ है संदेश देना, सूचना देना, हृदय में बात डालना और छिपाकर बोलना इत्यादि। इस्लाम में जब 'वह्य' का शब्द बोला जाता है, तो इसका अर्थ होता है—

> ''ईश्वर का वह संदेश जो मनुष्यों के मार्गदर्शन
> के लिए ईशदूत पर उतारा गया।''

क़ुरआन वह अन्तिम 'वह्य' है जो अन्तिम ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) पर भेजी गई। अल्लाह की ओर से 'वह्य' केवल ईशदूतों पर ही भेजी जाती थी। हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) पर निम्नलिखित विभिन्न तरीक़ों से वह्य नाज़िल होती थी।

सच्चे स्वप्न

1. हज़रत आइशा (रज़ि॰) कहती हैं कि आप (सल्ल॰) पर 'वह्य' का आरंभ इस प्रकार हुआ कि आप (सल्ल॰) जो कुछ रात को सपने में देखते, दिन में बिल्कुल वैसा ही हो जाता।

2. फ़रिश्ता (देवदूत) नज़र न आते हुए हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के हृदय पर अल्लाह के संदेश को डाल देता।

3. बड़े घंटे की आवाज़ की भांति। (हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) फ़रमाते हैं कि कभी-कभी मेरे ऊपर 'वह्य' बड़े घंटे की आवाज़ की भांति आती, जो मुझ पर बहुत कठिन होती)

4. फ़रिश्ते का मानवी रूप में 'वह्य' लेकर आना।

5. फ़रिश्ते का अपने वास्तविक रूप में वह्य लेकर आना। (हज़रत आइशा के अनुसार हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने हज़रत जिबरील (अलैहि॰) को दो अवसर पर उनके वास्तविक रूप में देखा।)

6. अल्लाह (ईश्वर) का बिना किसी माध्यम के, सीधे हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के हृदय पर 'वह्य' नाज़िल करना।

7. अल्लाह का बिना किसी माध्यम के सीधे हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) से बात करना।

केवल एक

कुछ लोग मानते हैं : सभी धर्म सही हैं। सभी धर्म एक हैं।

इस बात को मानने के दो परिणाम निकलते हैं। पहला, ईश्वर बेकार (Useless) काम करता है। ईश्वर ने इंसान को एक धर्म दिया, फिर दूसरा, फिर तीसरा, फिर चौथा...। दूसरा, ईश्वर इंसानों को आपस में लड़वाना चाहता है।

वास्तविकता यह है कि सारे धर्म एक नहीं हैं, बल्कि अलग-अलग हैं। हाँ! सभी (आसमानी) धर्मों का स्रोत (Source) एक ईश्वर (God) है। इसीलिए सभी धर्मों में मिलती-जुलती बातें नज़र आती हैं। सभी कहते हैं : झूठ मत बोलो, बड़ों की इज़्ज़त करो, छोटों से मुहब्बत करो, ईमानदार रहो, इंसाफ़

करो, अमन और शान्ति से रहो।

आज मौजूद सभी धर्म अलग-अलग हैं। अगर सभी धर्म एक होते, तो सब पर एक साथ अमल किया जा सकता। किसी इंसान के लिए, सभी धर्मों की शिक्षाओं पर एक साथ अमल करना असंभव है।

सच्चाई यह है कि आज सभी धर्मों को दो क़िस्मों में बाँटा जा सकता है। सुरक्षित धर्म (Preserved Religion) और असुरक्षित धर्म (Non-Preserved Religion)।

सुरक्षित धर्म वह है, जिसमें खुदा का पैग़ाम, आज भी हू-ब-हू उसी शक्ल में मौजूद हो, जिस शक्ल में उतरा। असुरक्षित धर्म वह है, जिसमें खुदा के संदेश को बदल दिया गया या भुला दिया गया। आज दुनिया में केवल इस्लाम ही पूर्णतया सुरक्षित धर्म है, जिसमें खुदा का पैग़ाम उसी भाषा में और उसी तरह मौजूद है, जिस तरह आज से चौदह सौ साल पहले उतरा था।

रुकावटें

इंसान सत्य (Truth) को पसंद करता है और उसे पाना चाहता है, मगर सत्य के रास्ते में इन सात बड़ी रुकावटों की वजह से ज़्यादातर इंसान पैग़म्बर (ईशदूत) की शिक्षा को अपनाने से रुक जाते हैं।

1. **घमंड** (Arrogance)

"जो लोग धरती में नाहक़ बड़े बनते हैं, मैं (खुदा) अपनी निशानियों की ओर से उन्हें फेर दूँगा। यदि वे प्रत्येक निशानी देख लें, तब भी वे उस पर ईमान नहीं लाएँगे। यदि वे सीधा मार्ग देख लें, तो भी वे उसे अपना मार्ग नहीं बनाएँगे। लेकिन यदि वे पथभ्रष्टता का मार्ग देख लें, तो उसे अपना मार्ग ठहरा लेंगे। यह इसलिए कि उन्होंने हमारी आयतों को झुठलाया और उनसे ग़ाफ़िल रहे।" (क़ुरआन, 7:146)

2. **दौलत** (Wealth)

"हमने जिस बस्ती में भी कोई सचेतकर्ता भेजा तो वहाँ के सम्पन्न लोगों ने यही कहा कि "जो कुछ देकर तुम्हें भेजा गया है, हम तो उसको नहीं मानते। (उन्होंने यह भी कहा कि) हम तो धन और संतान में तुमसे बढ़कर हैं और हम यातनाग्रस्त होनेवाले नहीं।"

(कहो) : "निस्सन्देह मेरा रब जिसके लिए चाहता है रोज़ी कुशादा कर देता है और जिसे चाहता है नपी-तुली देता है। किन्तु अधिकांश लोग जानते नहीं। वह चीज़ न तुम्हारे धन हैं और न तुम्हारी संतान, जो तुम्हें हमसे निकट कर दें। अलबत्ता, जो कोई ईमान लाया और उसने अच्छा कर्म किया, तो ऐसे ही लोग हैं जिनके लिए उसका कई गुना बदला है, जो उन्होंने किया।"

(क़ुरआन, 34:36-37)

3. सांसारिक ख़ुशहाली की वजह से स्वयं को नेक समझना

(Considering worldly fortune as a criterion of virtue)

"क्या वे यह समझते हैं कि हम जो उनकी धन और संतान से सहायता किए जा रहे हैं, तो यह उनके लिए भलाइयों में कोई जल्दी कर रहे हैं? नहीं बल्कि उन्हें इसका एहसास नहीं है।" (क़ुरआन, 23:55,56)

4. अटकल पर विश्वास करना (Reliance on speculation)

"धरती में अधिकतर लोग ऐसे हैं कि यदि तुम उनके कहने पर चले तो वे अल्लाह (ईश्वर) के मार्ग से तुम्हें भटका देंगे। वे तो केवल अटकल के पीछे चलते हैं और वे निरे अटकल ही दौड़ाते हैं।" (क़ुरआन, 6:116)

"उनमें से अधिकतर तो बस अटकल पर चलते हैं। निश्चय ही अटकल सत्य को कुछ भी दूर नहीं कर सकती।" (क़ुरआन, 10:36)

5. बुज़ुर्गों का अंधानुकरण (Blind following of ancestors)

"हम (ख़ुदा) ने जिस किसी बस्ती में तुम से पहले कोई सावधान करनेवाला भेजा तो वहाँ के संपन्न लोगों ने बस यही कहा कि हमने तो अपने बाप-दादा को एक तरीक़े पर पाया है और हम उन्हीं के पद-चिह्नों पर हैं, उनका अनुसरण कर रहे हैं।" (क़ुरआन, 43:23)

6. ग़लत विश्वास (Wrong beliefs)

"जान रखो कि विशुद्ध धर्म अल्लाह ही के लिए है। रहे वे लोग जिन्होंने उससे हटकर दूसरे समर्थक और संरक्षक बना रखे हैं (कहते हैं :) 'हम तो उनकी बन्दगी इसीलिए करते हैं कि वे हमें अल्लाह का सामीप्य प्राप्त करा दें।' निश्चय ही अल्लाह उनके बीच उस बात का फ़ैसला कर देगा जिसमें वे विभेद कर रहे हैं। अल्लाह उसे मार्ग नहीं दिखाता जो झूठा और बड़ा अकृतज्ञ हो।" (क़ुरआन, 39:3)

"वे लोग अल्लाह से हटकर उनको पूजते हैं, जो न उनका कुछ बिगाड़ सकें और न उनका कुछ भला कर सकें। और वे कहते हैं : 'ये अल्लाह के यहाँ हमारे सिफ़ारिशी हैं।' कह दो : 'क्या तुम अल्लाह को उसकी ख़बर देनेवाले हो, जिसका अस्तित्व न उसे आकाशों में ज्ञात है न धरती में?' महिमावान है वह और उसकी उच्चता के प्रतिकूल है वह शिर्क, जो वे कर रहे हैं।"
(क़ुरआन, 10:18)

7. पथभ्रष्ट नेता या मार्गदर्शक (Misguided leadership)

"निश्चय ही अल्लाह ने इंकार करनेवालों पर लानत (धिक्कार-फटकार) की है और उनके लिए भड़कती आग तैयार कर रखी है, जिसमें वे सदैव रहेंगे। न वे कोई निकटवर्ती समर्थक पाएंगे और न (दूर का) सहायक। जिस दिन उनके चेहरे आग में उलटे-पलटे जाएँगे, वे कहेंगे : 'क्या ही अच्छा होता कि हमने अल्लाह का आज्ञापालन किया होता और रसूल का आज्ञापालन किया होता।'

वे कहेंगे : ऐ हमारे रब। वास्तव में हमने अपने सरदारों और अपने बड़ों की आज्ञा का पालन किया और उन्होंने हमें मार्ग से भटका दिया। ऐ हमारे रब! उन्हें दोहरी यातना दे और उनपर बड़ी लानत कर।"
(क़ुरआन, 33:67-68)

□□